जिसने अनेक वर्षों तक मेरे हृदय-प्रदेश को परिहास की माधुरी से
मृदुल बना रक्खा था; जिसके वदनारविन्द की अमन्द मदिर
मन्द हँसी से मेरा मानस आनन्द-आन्दोलित हो उठता
था; जिसके मनोरम सरल सन्दर्शन से मेरी
कविता-लता को सञ्जीवन-जीवन मिलता
था; तथा जिसे खोकर मैं इस समय न
जाने कैसा सा हो रहा हूँ; मेरी
उसी प्रेम-प्रतिमा तथा
सेवा-मूर्ति स्वर्गीया
धर्मपत्नी
श्री सत्यव्रती देवी
को
मेरी कहानियों और कविताओं का यह संग्रह
सादर और सस्नेह
समर्पित
है।

समर्पिता—

कान्तानाथ पाण्डेय

क्या लिखूँ ?

कभी कभी हँस पड़ता था ! लोग कह उठते थे "चोंच जी ने कविता लिखी है।" वे भी उसे सुनकर हँसते थे। और अब क्या नहीं हँसते हैं ? अब भी हँसते ही हैं ! किन्तु मैं ?

मैं भी हँसता ही हूँ। अपने इस भाग्य-परिवर्तन पर ! हाँ वही तो ! लेकिन अब हृदय वह नहीं रहा ! जिस वस्तु से परिहास को उत्तेजन मिलता था, 'वह' अब कहाँ है ?

सत्यवती साहित्य मन्दिर
सप्तसागर काशी
दीपावली १९९२

कान्तानाथ पाण्डेय

महाकवि साँड़ की जयन्ती

भगवान् सूर्य्य को उदित हुए अभी दो घण्टे भी न बीते होंगे, मैं आराम से बिछौने पर पड़ा सो रहा था, कि इतने में बाहर से किसी ने बाँग देना प्रारम्भ किया—"कवि जी, कवि जी।" दस बारह हाँक तक तो मैंने सुना ही नहीं, किन्तु तेरहवीं बार पुकारे जाने पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई मुझे पुकार रहा है। मैंने दपट कर चट उत्तर दिया—अच्छा, अच्छा खड़ा रह!" और कतवारू को आवाज दी 'अरे कतवरुआ, मालकिन से पैसा लेकर जा, गली में खोमचे वाला कब से पुकार

[illegible] की मुद्रा बनाकर कहा—आप '[illegible]' को सभी ने सुशोभित करने के लिये कहा है!"

[illegible] रंग नाहीं मिलती! मैंने शास्त्री जी को [illegible] आड़े हाथों लिया। और, हम दोनों साहित्य दिग्गज, [illegible] का मान-मर्दन करते हुए, सभा के लिये चल पड़े।

साहित्य-मन्दिर का विशाल हॉल दर्शकों और श्रोताओं से ठसाठस भरा हुआ था। सभा की सूचना १० बजे की थी, किन्तु हम लोग ८ बजे ही पहुँच गये। सभा का कार्य ठीक १२ बजे से प्रारंभ हुआ। अन्य सब कार्य होने के अनन्तर शास्त्री जी हास्य-गर्जन और ताली-मर्दन के बीच अपना भाषण भाषण देने के लिये लपक कर खड़े हुए!

शास्त्री जी बोलेः—

भाइयो और भौजाइयो! अब आपको इस विषय में रत्ती मात्र भी सन्देह न रह गया होगा कि आपलोग प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महाकवि 'भाँड़' की पवित्र जयन्ती मनाने को ही यहाँ पधारे हुए हैं। ऐसे अवसर के लिये आपकी इस-सभा ने मुझे अपना 'पति' चुनकर अपनी जिस अलौकिक गुणग्राहकता का डिमडिमायमान परिचय दिया है, उसे हिन्दी साहित्य के इतिहासकार ७२ पौण्ड के कागज पर स्वर्णाक्षरों या रेडि-वर्णों में लिखेंगे। मैं बड़ा एकान्त-सेवी और विज्ञापन :ज्ञ पुराना साहित्यिक हूँ, किन्तु आपलोगों की गुद्ध-

उस समय के स्वनामधन्य स्वयम्भू समालोचकों ने उन्हें 'बिहारी बण्डा' की उपाधि दे डाली थी।

अब मैं महाकवि साँड़ के सम्बन्ध की दो चार सच्ची घटनाएँ सुनाता हूँ। एकबार कानपुर के एक प्रसिद्ध कवि ने उनके पास यह शिकायत भरा पत्र लिख भेजा कि अपनी पत्नी के मारे उनकी नाक में दम है। वह उन्हें भाँग नहीं छानने दिया करती और खुद भाँग पीसकर पिलाने की कौन कहे, उन्हें स्वयं भी घोंटने नहीं देती। इसपर 'साँड़' जी ने उनके पास यह आदर्श छन्द लिखकर भेजा था।

"जाकौ प्रिय न भाँग कौ लोटा।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि अपनो ढोटा।
घूमौ सकल तीर्थ क्षेत्रन में, एकै पहिर निगोटा।
पर विजया विन मिलै न कछु फल, यह हिसाव है मोटा।
जो न भाँग छानै निसिवासर, सो नर कपटी खोटा।
ते नर धन्य, वसै जिनके कर, सुन्दर कुण्डी सोंटा!
वनहु सुखी सिलवट्टा लै करि, कबहुँ न होवै टोटा।
नहिं तो दीन हीन कूकुर सम, घर घर चाटहु चोटा।

इसी पद के आधार पर कुछ लोगों ने गोस्वामी तुलसी दास और मीरा के पत्र-व्यवहार की झूठी कल्पना कर रक्खी है। संसार में जितने महाकवि हुए हैं, सभी भाँग छानते थे और अपनी कविता के निर्माण के पूर्व एक 'गोला' अवश्य ही

उस समय के स्वनामधन्य स्वयम्भू समालोचकों ने उन्हें 'बिहारी बण्डा' की उपाधि दे डाली थी।

अब मैं महाकवि साँड़ के सम्बन्ध की दो चार सच्ची घटनाएँ सुनाता हूँ। एकबार कानपुर के एक प्रसिद्ध कवि ने उनके पास यह शिकायत भरा पत्र लिख भेजा कि अपनी पत्नी के मारे उनकी नाक में दम है। वह उन्हें भाँग नहीं छानने दिया करती और खुद भाँग पीसकर पिलाने की कौन कहे, उन्हें स्वयं भी घोंटने नहीं देती। इसपर 'साँड़' जी ने उनके पास यह आदर्श छन्द लिखकर भेजा था।

"जाकौ प्रिय न भाँग कौ लोटा।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि अपनो ढोटा।
घूमौ सकल तीर्थ क्षेत्रन में, एकै पहिर निगोटा।
पर विजया बिन मिलै न कछु फल, यह हिसाब है मोटा।
जो न भाँग छानै निसिबासर, सो नर कपटी खोटा।
ते नर धन्य, बसै जिनके कर, सुन्दर कुण्डी सोंटा!
बनहु सुखी सिलबट्टा लै करि, कबहुँ न होवै टोटा।
नहिं तो दीन हीन कूकुर सम, घर घर चाटहु चोटा।

इसी पद के आधार पर कुछ लोगों ने गोस्वामी तुलसी दास और मीरा के पत्र-व्यवहार की भूठी कल्पना कर रक्खी है। संसार में जितने महाकवि हुए हैं, सभी भाँग छानते थे और अपनी कविता के निर्माण के पूर्व एक 'गोला' अवश्य ही

थे। वे थे पण्डित मकरन्द तिवारी और अकलेश तिवारी ! मकरन्द तिवारी को तो चार लोग जानते भी होंगे, अकलेश तिवारी का वर्णन मैं यहाँ पहिले भी कर चुका हूँ। वे तिवारी जी कहाँ रहते थे, सो तो ठीक मालूम नहीं, पर इतना अवश्य है कि वे जो कुछ लिखते थे उनके पोल प्रतिभा के हिसाब से उनका लिखा हुआ भी रहता था। बचपन में वे गुलगप्पे बेचते थे, कुछ दिनों तक 'चने जोर गरम' भी बेचा। कुछ दिन चूरन बेचने वालों के भी साथ रहे। उन्हीं की संगति से चूरन के लटके सुनते-सुनते इन्हें भी कुछ कविता करने की सूझी।

बस फिर क्या था, बरसाती मेढकों की तरह इन्होंने अपना एक दल कायम किया। न मालूम, किस पाजी ने इन्हें यह गुरुमन्त्र दे दिया—

'बेटा यदि तुम कुछ अपना नाम चाहते हो तो औरों को बदनाम करो।"

बस फिर क्या था, इन्होंने सूर, तुलसी, केशव, बिहारी आदि महाकवियों को गाली देना प्रारम्भ कर दिया। धीरे धीरे नाम कमाने के चक्के में कुछ मौलिक बातों के फेर में पड़ने लगे। कहीं से कोई नायिका भेद भी आप ढूँढ़ लाये। उसका सम्पादन भी कर डाला।

अब क्या था ! जहाँ थे तिवारी जी ही थे। एक दिन एक क—सम्मेलन में यारों ने कहा—भाई आज तो कोई ऐसी

मौलिक बात कहो, कि कवियों में खलबली मच जाय। तिवारी जी भी अपनी स्थूल बुद्धि के अनुसार झट तयार हो गये। आप कहने लगे—सज्जनों! संसार की सभी नायिकाएँ परकीया ही थीं। सब नायिका—भेद इसी के अन्तर्गत हैं। कवियों की स्त्रियाँ सदैव खण्डिता ही रहती हैं। गोस्वामी जी महाकवि सूरदास से ७०० वर्ष पूर्व बिहारी के वंश में रोहिताश्वगढ़ के किले में पैदा हुए थे! अंग्रेजी के कवि शेक्सपीयर ने राबर्ट साउदी की जीवनी में जो अलंकार भर दिया है उसी की चोरी कर के हिन्दी में रीति काव्य का प्रादुर्भाव किया गया है—" इत्यादि!

श्रोताओं ने ताली पीट दी—"क्या बात है। समालोचक हो तो ऐसा! दूध का दूध और पानी का पानी कर दे।"

किन्तु तिवारी जी के दुर्भाग्यवश उनके पिता भी उस सभा में उपस्थित थे! उन्होंने तो कभी कविता की नहीं थी! पर कविता किस जन्तु विशेष का नाम है, इसे वह जानते थे। तिवारी जी की ऊल जलूल बातें सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। बस जनाब जिसप्रकार क्रौञ्चमिथुन के दुःख पर महर्षि बाल्मीकि के अन्दर काव्य का स्फुरण हुआ था, ठीक उसी तरह उनके मुँह से यह पद निकल ही तो पड़ा—

घर में बाकी बचा न एकौ लोटा थरिया।
तुझको तो है भैंस बराबर अच्छर करिया॥
नाचा करता इधर उधर ज्यों दुष्ट बँदरिया।
अच्छा पाया नाम कमाने का यह जरिया॥

चल हट, जाके माफ किया कर कोई कविता।
अरे हट, रे [illegible] नकलोल [illegible] !!

उनके पिताजी न जाने क्या तक क्या क्या कहते किन्तु तिवारी जी ने उनके पैर पकड़ और नाक रगड़ कर कसम खायी कि अब किसी सम्मेलन सभा में न तो जाऊँगा और न भाषण करूँगा। तब कहीं कुछ शान्त हुए!

भाइयों और भौजाइयों! कहना तो बहुत था, किन्तु अब समय बहुत हो गया, अभी कितने ही कवि अपनी कविता सुनाने के लिये उत्सुक बैठे हैं। अब मैं परम पिता से प्रार्थना करता हूँ कि वे आप लोगों को महाकवि सोंड़ की तरह अथवा कम से कम उनके किसी अंग की ही तरह योग्य बनावें, जिससे आप लोग हिन्दी भाषा का जीर्णोद्धार करते हुए विश्व-साहित्य में समादर पा सकें। एवमस्तु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

—o—

शठानन्द शास्त्री

गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन यदि ठीक मान लिया जाय तो, जिस प्रकार पवनपुत्र द्वारा लंका—दहन होने पर मन्दो-दरी ने रावण को गाली देना प्रारम्भ किया था, ठीक उसी प्रकार जब 'हँसोड़' के सम्पादक ने मुझसे एक लेख माँगा, तो बन्दे ने एक साँस में उन्हें दो सौ तिरपन गालियाँ दे डालीं। एक तो योंही खुदा की दी हुई औंधी खोपड़ी, दूसरे बुक्सेलर साहब के यहाँ की खरीदी हुई सन् १९१४ की टुटही कलम, तीसरे 'कुआर क महिना' आदि ऐसे न मालूम कितने कारण

थे जिससे सम्पादक महोदय का पत्र मुझे गुड़ की चाशनी में बुझाये हुए कामदेव के पञ्च बाणों से भी बढ़कर दुःखद प्रतीत हुआ। लेकिन कुछ मित्रता का संकोच होता ही है। सम्पादक साहब मेरे लँगोटिया यार थे। अतएव मैं भी मित्रता निभाने की गरज से कलम कुल्हाड़ा लेकर और कछौटा मारकर लेख लिखने बैठ ही तो गया। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि कागज़ मैंने वही इस्तेमाल किये जिन्हें मैंने अपने मित्र डाक्टर बनारसी प्रसाद 'भोजपुरी' की 'नोटबुक' में से, चुपके से (केवल मज़ाक़ में!) निकाल लिये थे!

बैठ तो गया पर जब दिमाग़ उगले तब तो! सिर पर 'अन्नपूर्णा फार्मेसी' के 'कामिनिया ऑयल' की खूब मालिश की; पर वहाँ कौन सुनता है! वह भी तो किसी अन्धेरी कचहरी से कम न था! मन में आया कि अपने दिमाग़ की दुम में रस्सा बाँध कर 'मोहन बगान टीम' के साथ एक 'टग ऑफ वार' मैच खेल डालूँ। पर न मालूम क्या सोचकर रह जाता था। इसी उधेड़बुन में पड़ा जब मैं Confused हो रहा था, तभी मेरी ससुराल के पुरोहित श्रीमान् शठानन्द जी आते दिखलायी पड़े। उन्हें देखते ही तो मेरा कलेजा इतनी जोर से उछलने लगा मानो उसमें Earthquake (भूकम्प) आगया हो! सच कहता हूँ उस समय मुझे इतनी प्रसन्नता हुई जितनी किसी छायावादी लेखक को 'टेक्स्ट बुक कमिटी' के मेम्बर बन जाने में भी न होती होगी!

श्री शठानन्द कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। इन्हें आप कोई ऐसा वैसा न समझ लीजियेगा! आप अपने गाँव 'लट्टपुरा' में एक अत्यन्त असाधारण पुरुष माने जाते हैं। आपकी शरीर-रचना करते समय बूढ़े विधाता बाबा को कुछ झँपकी आ रही थी! जिससे आपके कुछ अङ्गों में Compare and contrast करने की काफी गुन्जाइश थी। न मालूम भगवान् ब्रह्मा को आपसे क्या प्रेम था कि आपने शास्त्री जी को ठीके पर ठीकेदारों से बनवाना उचित न समझा और स्वयं ही उन्हें गढ़ा! भगवान् ब्रह्मा चाहे स्वयं पक्षपात करें तो करें, मगर उन्हें यह कब मंजूर था कि उनके बनाये श्री शठानन्द जी भी पक्षपात करें। वे तो चाहते थे कि शास्त्री जी सबको एक आँख से देखें। इसीलिये शास्त्री जी ने सबको एक आँख से देखने के योग्य होकर ही इस संसार में पदार्पण किया है! आपकी सुन्दरता का वर्णन मैं भला क्या कर सकता हूँ, फिर भी "देखा जो हुस्ने यार तबीयत मचल गयी" के मुताबिक, तबीयत ससुरी ही नहीं मानती। इसलिये आपकी सुन्दरता का कुछ वर्णन तो अवश्य ही करूँगा।

मैं इस बात को कहिये तो टाउनहाल में हजार पाँच सौ के सामने, या कहिये तो गंगा जी में कमर बराबर पानी में खड़ा होकर कहने के लिये तैयार हूँ कि शास्त्री जी का मुँह किसी लोढ़े से कम सुन्दर तो किसी भी हालत में नहीं है। आपकी ठीक ५ इञ्च की नाक गाँव भर की स्त्रियों को Magnat (चुम्बक) की

तरह अपनी ओर खींच लेती है ! आपके ठीक पनडब्बा सरीखे ललित लोचन पाँच छ साल के बालकों को भयभीत करने की कला में पक्के हैं। आपके सर के बाल तो इस तरह उड़ गये हैं कि जैसे गधे के सर पर से सींग। अब क्या बतावें, कामदेव और आप में सिर्फ इतना ही भेद है कि वह बेचारा अनङ्ग है और यह हैं पूरे सवा तीन फीट के। विष्णु और आपमें केवल इसी बात की असमानता है कि वे घन-श्याम हैं तो ये बिलकुल तमाखु के समान मनोहर श्यामवर्ण के हैं। चन्द्रमा बिचारे की क्या हिम्मत जो इनके मुख की तुलना में ठहर सके। अजी उसमें कलंक-कालिमा है ही कितनी !

पोशाक भी आपकी निराली ही है। कमर के नीचे और घुटने के कुछ ऊपर तक की बाउण्ड्री को घेरे हुए आपकी निराली विशाल धोती, शुद्ध विलायती कपड़े की एक फटी मिर्जई, सर पर छींक देने से उड़ जाने वाली दुपल्ली टोपी - बस यही सब आपके वस्त्र हैं ! कभी-कभी शादी बारात में जाने के समय आप एक पगड़ी भी अपने सिर पर बाँध लिया करते हैं जिसे आपने अपनी ससुराल मे पाया था और जो आपके ससुर के फूफा के किसी मामा की थी। मुझे विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि ये 'मामा' महोदय 'वारेन हेस्टिंग्स' के किसी क्लर्क के यहाँ अरदली थे और उनसे एक 'विद्रोही नौकर' को पकड़वा कर इसे पुरस्कार—स्वरूप पाया था ! इस पगड़ी को शास्त्री जी खास चावल के कुण्डे में छिपा कर रखते थे। कभी कभी माथे

तस वरौ मिला! आज कल त लौएडवे अंग्रेजी पढ़ के 'गरजू वेटे' (Grdauate) वनै क फिकिर करलन! कौनो सारे संस-कीरत अउर का नाँव से हिन्दी के पूछवै न करलैं। भला भइया, सरवतिया क भाग नीक रहा जवन अस वर पाय गइल!"

शास्त्री जी जव जनवासे में आये थे तो मुझसे उनसे खूब छनी थी। वहाँ वे अपनी विद्वत्ता दरसाते हुए वोले—वेटा! तुम कौन किताव ऐसा क्या नाम से कि संसकीरत में पढ़ते हो? आँय! भारवानुवर···नम्! यही तो कहता हूँ कि अव पढ़ाई में कुछ रह नहीं गया। जव तक अलग से पाठशाला में क्या नाम से संस-कीरव न पढ़ै, तव तक पढ़ाई कैसी! मैंने भी कम पुस्तकें नहीं देखी हैं! मेघदूत कवि के वनाये 'कालीदास नाटक' हरिश्चन्द्र लिखित 'भारतेन्दु काव्य' शकुन्तला मुनि लिखित 'लक्ष्मण सिंह' नाटक का भाष्य, विहारी कवि की वनायी 'पद्म सिंह सतसई' मिश्रवन्धु विनोद की लिखी कविता कौमुदी, और 'प्रियप्रवास' कवि के बनाये 'भूषण ग्रन्थावली' उपन्यास आदि अनेक ग्रन्थ क्या नाम से पढ़ चुका हूँ।

मैं गवईं में रहवा हूँ, इससे तुम्हारे हिन्दुस्तान का क्या हाल चाल है सो क्या नाम से मैं नहीं जानता ऐसा न समझना। मेरे मित्र चिथरू मिसिर के यहाँ 'जानकी शरण' नामक एक पत्र आता है जिसके सम्पादक 'कविवर सूर्य' हैं! और जो काशी जी से निकलता है! अभी परसों उसमें पढ़ा था कि डिवेलेरा ने किसानों से क्रान्ति करने को कहा था जिसपर पटेल

"सम्पादक की दुम !"

दूबे जी सम्पादक थे ! इस बात को मथुरा के सभी पढ़े लिखे लोग जानते थे । सम्पादक होना कोई साधारण बात नहीं है ! कितने आदर और सम्मान का पद है ! हाँथ में झोला लटकाये और झोले में कागजों का विशाल कतवार भरे, चार बीड़े पान इस गाल में और चार बीड़े उस गाल में दबाये, आँखों पर सुनहली कमानी का चश्मा लगाये और हाथ में मोटा सोंटा झुलाते, कमर लचकाते जब आप इस ओर से उस ओर घूम जाते थे, तो देखने वाले दंग रह जाते और "सम्पादक जी

नमस्ते" की झड़ी सी लगाकर आपका स्वागत करने लग जाते थे !

सम्पादक के सिवाय दूबे जी और भी कुछ थे। बाहरी जनता की दृष्टि में वे केवल शुष्क सम्पादक मात्र भले ही माने जाते रहे हों, पर वास्तव में 'प्रेस' के अन्दर आप का एकाधिपत्य था और आपही सब विभागों के एकमात्र नायक थे! आपही प्रूफरीडर तथा फोरमैन भी थे। कमरे की स्वच्छता और सफाई ऐसा उपयोगी प्रश्न भी आप को ही हल करना पड़ता था। प्रेस के मैनेजर के ज्येष्ठ पुत्र रविशंकर के आप प्राइवेट ट्यूटर भी थे। उनके दो छोटे छोटे बच्चों के खिलाने आदि का महत्वपूर्ण भार भी आपके ही सुदृढ़ कन्धों पर न्यस्त था। प्रेस के मैनेजर महोदय के वृद्ध पिता श्रीयुत बिरजू बाबू के लिये सायंकाल भांग भी आप ही पीसा करते थे! इसीसे जाना जा सकता है कि सम्पादक जी कितने जिम्मेदार थे तथा उनकी प्रतिभा कैसी सर्वतोमुखी थी।

हाँ, यह तो मैं कहना ही भूल गया कि सम्पादक जी को कविता का शौक़ था। आपके घर में "संगीत हरिश्चन्द्र" और 'कव्वाली-कलाप' नाम के दो अमूल्य ग्रन्थ-रत्न वर्तमान थे। उन्हें आपने कण्ठाग्र कर डाला था। उन्हीं के आधार पर आपने कुछ कविताएँ लिख डाली थीं! उन्हें आप यथासमय अपने पत्र के टाइटिल पेज पर छापते थे।

सम्पादक जी की शहर में बड़ी इज्जत थी। शहर के जब

कोई हाकिम हुक्काम किसी सार्वजनिक कार्य में शरीक होते थे, तो सम्पादक जी की भी बुलाहट होती थी ! यदि किसी अन्य नगर का प्रतिष्ठित राजपुरुष आपके नगर में पदार्पण करता तो उसके स्वागत-गान के निर्माण का कार्य आप को ही सौंपा जाता और आप बड़ी ही तत्परता और तन्मयता से अपनी इस कला का परिचय दिया करते थे !

एक बार मथुरा में कानपुर के प्रसिद्ध मिल-ओनर सेठ भीखम भाई पाटनवाला पधारे। म्युनिस्पैल्टी की ओर से आपके स्वागत का आयोजन हुआ। नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति टाउन-हाल में आपका स्वागत करने के लिये उपस्थित हुए ! सभापति महोदय ने दूबे जी से स्वागत-गान पढ़ने के लिये अनुरोध किया।

दूबेजी ने पहिले तीन चार बार खाँसा, फिर रूमाल से नाक साफ करने के बाद चश्में को साफ़ किया और उसे यथा—स्थान नासिका के अग्रभाग पर स्थापित करते हुए दूर्वाकन्द-निकन्दन-विनिन्दित उच्चस्वर में कविता का पाठ प्रारम्भ किया—

सेठ भीखम भाई पाटन वाला पधारे हैं,
मुबारक हो मुबारक हो।
भाग्य मथुरा नगर के धन्य हमारे हैं,
मुबारक हो मुबारक हो॥
सेठजी का नाम संसार में कौन नहीं जानता,
मुबारक हो मुबारक हो।

कामों के लिये दूबे जी विशेष तय्यार हो जायँ ऐसा विचार कर गर्ग जी ने दूबे जी को भाँग छानने के लिये ॥ [illegible])॥ आने पैसे भी दिये। दूसरे सप्ताह के '[illegible]' (यही सम्पादक जी के साप्ताहिक पत्र का नाम था) में लोगों ने इस कविता को बड़े शौक से पढ़ा—

"गर्ग जी हैं खड़े मेम्बरी के लिये।
होंगे कुछ 'पै' न इस नौकरी के लिये॥
गर्ग जी मेम्बरी के लिये हैं खड़े।
फीस इनकी कम है, ये डाक्टर बड़े॥
साफ़ गलियाँ ये मथुरा की करवायेंगे।
बात क्या फिर जो पैरों में कंकड़ गड़े॥
गर्ग जी हैं खड़े मेम्बरी के लिये।
देश-उपकार के हैं नगरके लिये॥
वोट को दीजिये दीजिये दीजिये।
बोर्ड में भेजिये भेजिये भेजिये॥
मेम्बरी के लिये हैं खड़े गर्ग जी।
इस नगर के हैं नेता बड़े गर्ग जी॥"

कविता के नीचे गर्ग जी की गुणावली गायी गयी थी। उनके नाम से एक मेनिफेस्टो भी छपा था। उसमें गर्ग जी की ओर से मेम्बर हो जाने पर नगर की सेवा करने के बारे में उनका निम्न लिखित प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित था।

(७) मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेम्बर हो जाने पर मैं अपने वोटरों से फ़ीस न लूंगा, उनके घर में किसी के बीमार हो जाने पर उसकी दवा भी मुफ्त में करूंगा। यदि आवश्यक होगा तो घर से ही पथ्यपानी का भी प्रबन्ध कर दूंगा। आदि आदि।

दूबेजी के एक मित्र थे बा० हुरपेटन सिंह। बा० हुरपेटन सिंह ने एक दवाखाना खोल रक्खा था। उसमें आप 'दन्त-मञ्जन' और 'नेत्र-सुरमा' ऐसे दो अलभ्य और दुष्प्राप्य औषध रखकर बेंचते थे। आपने एक बार दूबे जी से कहा—यार कोई कविता बनाकर हमारे दन्त मंजन और सुरमे का विज्ञापन करते जिसमें कुछ बिक्री बट्टा बढ़ता। फिर क्या था 'प्रचण्ड' के आगामी अंक में यह कविता दिखलायी पड़ ही गयी—

"खरीदें शौक से मेरा निराला दाँत का मंजन।
जगत् में सब दवाओं से है आला दाँतका मंजन॥
करेंगे रोज तो फिर रोग कोई हो न पावेगा।
करेगा यह सभी बीमारियों के गर्व का गंजन।
रगड़कर रोज दातों में इसी को भक्ति श्रद्धा से,
महाकवि हो बनारस के गये थे विप्र दुख भंजन।
रगड़ते हैं इसी को कालेजों के छात्र भी हर्षित,
इसी को प्राप्त कर, करते हैं प्रोफेसर, मनोरंजन।
बना देगा सभी दातों को यह मजबूत लोहे सा,
घसीटेंगे स्वयं दातों से फिर तो रेल का इञ्जन।"

सम्पादक जो परीशान होते थे तो केवल अपने प्रेस के

कम्पोजीटरों से। यद्यपि सम्पादक जी का अखवार केवल तीन ही पृष्ठ का निकलता था और उसपर प्रूफ देखने में ये उसी प्रकार तल्लीन हो जाया करते थे जिस तरह इनकी पत्नी अपनी माँ के बालों में से जूं निकालते वक्त होती थी, तथापि कम्पोजीटरों ने बुद्धि के विरुद्ध बगावत का ऐसा झण्डा फहरा रक्खा था, कि वे सब बार बार अशुद्धियों की भरमार कर देते थे। हिन्दूधर्म शास्त्र की आज्ञा है कि शौच के बाद बायें हाथ को १७ बार मिट्टी से मल कर धोना चाहिये। दूबे जी इस आदेश का पालन प्रूफ देखने के सम्बन्ध में करते थे। १७ बार प्रूफ देख कर १८ वीं बार वे छापने का आर्डर देते थे। किन्तु यदि कम्पोजीटर लोग फिर भी वर्तमान टीकाकारों की तरह पाठान्तर कर दें तो इससे दूबे जी का क्या दोष ? एक बार तो इन मूर्खों ने अखवार मे दूबे जी के नाम के आगे प्रधान सम्पादक के स्थान पर 'गधा न सम्पादक' तक छाप दिया था !

सम्पादक जी ने एक बार अपनी 'वियोगी' शीर्षक कविता, मय अपने चित्र के छपने को दी थी।

कविता मे एक चरण यह था—

बेदम सा पड़ा हुआ हूं,
लगता है घर भर सूना।
अन्दर हूँ आग छिपाये,
बाहर हूँ हास्य-नमूना।

प्रातःकाल दुबे जी ने प्रेस में आकर देखा कि गुप्ताराम्मों ने इस चरण को इस तरह छापा है—

"बेदुम सा खड़ा हुआ हूँ
लगता है सरपट चूना ।
अन्दर हूँ आम छिपाये,
बहिरा हूँ हाय न पूना !"

सम्पादक जी के काव्य का एक चरण यह था—

वे सूत्रधार का नाटक,
मैं बिना राग का बाजा ।
तू तज कर चली गयी क्यों,
तू है निष्ठुर अब आजा ॥

कम्पोजीटरों ने इसे इसप्रकार विशुद्ध स्वरूप में छापा था—

वे मूत्रधार का पाठक,
मैं किनाराम का साला ।
तू उजबक चली गयी क्यों,
तू है मिस्टर की माता ॥

एक बार आपने अखबार में यह समाचार छापने को दिया—"विगत २६ जनवरी को पार्लमेण्ट में भारतवर्ष के बारे में भाषण करते हुए सर सेमुएल होर ने डाक्टर अम्बेडकर को बड़ी प्रशंसा की।" पाठकों ने दूसरे दिन इस समाचार को निम्नलिखित रूप में पढ़ा—"विगत २६ जनवरी को पिपरमेण्ट में भरतवर्षा के

बारे में भाषण करते हुए डाक्टर गोर ने सर सैमुएल अम्बेडकर की बड़ी प्रशंसा की।"

एक बार सम्पादक जी के घर से पत्र आया कि उनकी पत्नी बड़ी बीमार है। आप छुट्टी लेकर घर गये। देखा पत्नी को कोई रोग नहीं है। पूछा—क्यों जी तुम तो भली चंगी बैठी हो। फिर रोग का बहाना क्यों किया ? पत्नी बोली—यों शायद तुम आते नहीं। मेरी सखी विमला ने अबकी ३० भर चाँदी की हँसुली बनवाई है। चीज अच्छी है। मैंने सोचा तुम्हारे आने पर मैं भी वैसी ही तयार करवा सकूँगी। सो अब तुम आ ही गये। शाम को सोनार को बुलवा कर सब समझ न लो !

सम्पादक जी तो खूब चकराये ! पत्नी ने कैसा बेवकूफ बनाया ! लाचार क्या करते। तयार हो गये। लेकिन जितने रुपयों का खर्च था, उतने रुपये उनके पास थे नहीं. अन्त में औरत से कहा सुनी हो गयी। औरत भी आप की आदर्श हिन्दू महिला थीं। यद्यपि आपके गाँव मे कांग्रेस का प्रचार नहीं हुआ था, फिर भी आपने 'सविनय अवज्ञा' और 'असह-योग' का सिद्धान्त बहुत दिनों से स्वीकार कर रक्खा था। उन्होंने अल्टिमेटम दिया ! कुछ परिणाम न निकलने पर । मैके चली गयीं।

सम्पादक जी तो बड़े दुखी हुए। न इधर के रहे न उधर के रहे। इस बसन्त की ।ऋतु में ६ महीने पर घर आये, तो

पत्नी कोंहा कर मैके चली गयी! सोचा मैनेजर का पत्र लिख कर कुछ रुपये मँगाऊँ और स्त्री को भी उसके नैहर में पत्र भेजूँ कि किसी प्रकार चली आवे। (स्त्री को चिट्ठी पत्री लिखना पढ़ना दुबेजी ने बड़े प्रेम से सिखलाया था।) आपने दोनों स्थानों पर पत्र लिखा और बूढ़े नौकर टीमल को दिया कि डाक में छोड़ आवे।

सम्पादक जी को यह स्वप्न में भी आशा न थी कि मैनेजर साहब रुपये भेजेंगे। परन्तु जब उन्होंने स्वयं खिड़की में से दूर से आते हुए मैनेजर साहब को देखा तो बड़े प्रसन्न हुए, और उनकी साधुता पर आश्चर्य करते हुए नीचे दौड़े! "वाह आज गाँव पवित्र हो गया। मुझे ऐसी आशा न थी कि श्रीमान् के खुरारविन्द मेरे गाँव मे आवेंगे" आदि कहते कहते आप मैनेजर साहब से बड़े प्रेम से मिले।

परन्तु दुष्ट मैनेजर तो इनके सिर पर एक चपत लगा बैठा और लगा गालियों से इनके पूर्वजों को पिण्ड-दान देने! गाँव भर के तमाशबीन एकत्रित होकर मामला समझने की चेष्टा करके इन नवागत शहरी बाबू साहब पर प्रश्नों की बौछार करने लगे! मैनेजर बोला—मैं नहीं समझता था कि ये दूबे जी ऊपर से मेरी इतनी अभ्यर्थना और प्रशंसा करते हैं, तथा इनके भीतर इतने बुरे विचार खास कर मेरे प्रति भरे हुए हैं। यह लीजिये आप लोग खुद यह चिट्ठी पढ़ देखिये। मेरा रुपया खाकर मेरी ही निन्दा!" ऐसा कह कर मैनेजर ने वह चिट्ठी गाँव वालों के

सामने फेंक दी। एक मनचले और शोखदिल जवान ने एक कोने में जाकर अपने उम्र के मित्रों को उसे सुनाना आरम्भ किया—

हृदयेश्वरी,

सस्नेह आलिंगन।

आखिर तुम रूठकर चली ही गयीं। तुमने मेरी परिस्थितियों पर कुछ भी विचार नहीं किया। मेरा मैनेजर बड़ा दुष्ट है। अव्वल तो वह पाजी मुझे छुट्टी ही नहीं दे रहा था। पर उस मुए ने छुट्टी दी। अब अगर उससे तनख्वाह के रुपये भी यहाँ से अगता मँगाऊँ तो क्या वह दे देगा। है वह एक ही सूमड़ा! उसके पास रुपयों की कमी नहीं। स्वयं किस ठाट से रहता है। किन्तु मुझे तनख्वाह देते उसको नानी मरती है। यह तो कहो कि मैं ऐसा रोब बनाये रहता हूँ कि जिससे मालूम हो कि दुबे जी १००) रु० मासिक से कम क्या पाते होंगे। पर देवी तो है आखिर १७) रु० महीने ही न! देखो मैं साहस करके उसे पत्र लिख रहा हूँ। यदि वह कठोर पत्थर पसीजा तो रुपये भेज देगा, नहीं तो यहीं किसी से उधार ले लूँगा। अब तुम हठ छोड़ कर चली आओ!

तुम्हारा—

चन्द्रशेखर दुबे!

वह युवक इस प्रकार पत्र पढ़ कर सुना रहा था कि जिसमें दुबे जी भी सुन सकते थे। अब उनकी समझ में आया कि बात क्या हो पड़ी है।

शीघ्रता में उन्होंने अपनी पत्नी वाला पत्र मैनेजर के लिफाफे और मैनेजर वाला पत्र अपनी पत्नी के लिफाफे में बन्द कर के डाक में छोड़वा दिया था।

मैनेजर बोला—क्यों देखी और सुनी न अपनी करतूत! इसी प्रकार आप का दूसरा पत्र, जो आपकी पत्नी के यहाँ चला गया है, और जो वास्तव में मेरे लिये लिखा गया था, मेरी प्रशंसा से भरा और आपकी पत्नी को निन्दा से परिपूर्ण होगा।

बात तो सच थी। जो पत्र दुबेजी के दुर्भाग्य से उनकी पत्नी के पास पहुँच चुका था, उसमें उन्होंने मैनेजर से रुपयों की याचना करते हुए उनका बड़ा गौरव—गान किया था। पश्चात् उसमें लिखा था—

मैनेजर साहब क्या करूं, रुपये माँगते मुझे दुःख हो रहा है, पर मेरी स्त्री बड़ी डाइन है। जब देखो रुपये की माँग! मैं तो परेशान हो गया हूं। अबकी मथुरा आऊंगा तो वहाँ से वापस आने का नाम न लूंगा। ससुरी हट्टी कट्टी है, पर रोग का बहाना किया था, और अब उसकी गुस्ताखी तो देखिये कि नाराज होकर नैहर भाग गयी है! दुबला पतला आदमी हूँ, इससे कुछ भय लगता है, नहीं तो उसको इतना पीटता कि वह

भी जानती ! खैर इस बार तो रुपये भेज कर मेरी प्रतिष्ठा बचाइये। इत्यादि।"

सम्पादक जी के मस्तिष्क में ये ही सब बातें बिजली के करेण्ट की तरह दौड़ रही थीं। "यदि स्त्री ने यह पत्र पढ़ा, तब मेरा कौनसा कर्म-काण्ड होगा ?" अड़ोसी पड़ोसी हँस रहे थे। दुष्ट मैनेजर दुबेजी को बेतरह घूर रहा था। वह बोला, लीजिये अपना बकाया हिसाब ! अब मुझपर इतनी कृपा करने का काम नहीं है।

गाँव के बड़े बूढ़ों ने, जिनके पास दुबे जी की बदौलत 'प्रचण्ड' की कुछ प्रतियाँ प्रति सप्ताह पहुँचा करती थीं, उनकी पैरवी करते हुए कहा—जाने दीजिये, पीठ पीछे तो लोग बाद-शाहों तक को गाली दिया करते हैं। आपको बुरा न मानना चाहिये। केवल पत्नी को प्रसन्न करने के लिये ही आपकी निन्दा की थी। आखिर चाणक्यनीति के ज्ञाता और सम्पादक जो ठहरे।

मैनेजर ने बिगड़ कर कहा—अजी बाज आया ऐसे सम्पा-दक से, यह सम्पादक हैं, या सम्पादक की दुम !

इतिहास बतलाता है कि बस इसी मंगलमय दिवस से दुबे जी का यह लोक-विख्यात नामकरण हुआ !

—०—

पं० हरबोंग उपाध्याय

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी के बाप दशरथ जी की !

अरे साहब कुछ न पूछिये। इस समय बड़ा 'बिज़ी' हूँ। अभी अभी सबको नीचे से बिदा करके कोठे पर आया हूँ। आज कल बनारस में फर्रुखाबाद के सुप्रसिद्ध व्याख्यान-वाचस्पति पं० हरबोंग उपाध्याय पधारे हुए हैं। आप बड़े भारी साहित्यिक हैं; ताड़ के पेड़ से भी ऊँचे! कल से मेरे ही यहाँ ठहरे हुए हैं। आपसे मिलने के लिये शहर के बड़े-बड़े

'लीडर' और साहित्यिक मेरे यहाँ चले आ रहे हैं। कहिये, किसी आदमी को अपने यहाँ टिकाना भी कितना अच्छा है! कुछ खर्च तो अवश्य होता है पर नाम भी तो हो जाता है। हे देखिये, बात तो सच यह है कि युग ही प्रोपोगेण्डा का है। आप लाख कहें मैं तो यही कहूँगा कि आप भी प्रोपोगैण्डिस्ट हैं। आप बुरा जरूर मानेंगे, पर माना करिये! यही न होगा कि आप नाराज हो जायँगे तो मेरा लेख न छापेंगे। लेकिन याद रखियेगा अब मैं वही पुराना भुक्खड़ लेखक नहीं हूँ जो टिकट लगा-लगा कर रजिस्टरी चिट्ठियाँ भेजा करता था। अब तो आठ-आठ 'रिमाइण्डर' पर भी मैं टस से मस नहीं होता।

सम्पादक जी! वाक़ई आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। ईश्वर करें आपका सौभाग्य अचल हो! आपकी भी नये-नये कवि और लेखक कैसी स्तुति किया करते हैं। जिस समय वे लोग आप के इर्द गिर्द मँड़रा कर आपका गुण—गान गाते होंगे, उस समय आप अपने को नवाब के नाती या पोता से कम कदापि न समझते होंगे।

सम्पादक जी, मुझे इस बात का हार्दिक दुःख है कि यद्यपि दुनियाँ की निगाहों में इस समय मैं एक विशिष्ट जन्तु समझा जाता हूँ, फिर भी आप मुझे वही काठ का उल्लू समझते हैं। भगवान् झूठ न बुलावें, इस समय इस धरातल का भार बढ़ाने वाले ऐसे केवल २ ही प्राणी हैं जो मुझे 'बेवकूफ' और परले सिरे का घनचक्कर समझते हैं। उनमें एक तो आप ही हैं और दूसरी

मेरी श्रीमती जी ! मैं तो आप दोनों को समान ही समझता हूं। दोनों के बारे में मेरी धारणा ऐसी ही है।

लेकिन याद रहे कि बुद्धि सब आपके ही बाँट में पड़ी है, सो बात नहीं है। मैंने व्याख्यान-वाचस्पति जी को अपने यहाँ ठहराया है वो किसी खास मतलब से। बतला दूँ क्यों ? लेकिन भाई बात तो यह है कि सम्पादकों के पेट में बात तो पचती ही नहीं है ! तुम्हें तुम्हारे 'ट्रेडिल मशीन' की कसम, इस बात को किसी से कहना मत ! लो बतला देता हूँ। सावधान होकर सुनो ! इस बार मैं अपनी कुल कविताओं का संग्रह करके सेकसरिया हरे हरे शिव शिव ! देव-पुरस्कार के लिये भेज रहा हूं। और हमारे हरबोंग जी उस समिति के एक प्रधान निर्णायक हैं। अब समझे महाशय जी ! हूँ न बुद्धिमान् ! मानते हो न ! तुम इसे प्रोपोगेण्डा कहोगे ! कहा करो ! कौन नहीं करता ! मै तो इसे आपके कानों में लाउडस्पीकर लगा कर जोर से कह सकता हूं कि जो आदमी प्रोपोगेण्डा की जितनी ही अधिक निन्दा करता पाया जाय, उसे उतना ही बड़ा 'विज्ञापन बाज' समझना चाहिये !

यार किसी की निन्दा न करनी चाहिये, किन्तु महर्षि नारद के आशीर्वाद से कुछ पैतृक परम्परा ऐसी चली आयी है कि सत्य बात कहने के लिये चित्त बेचैन हो उठता है। यह जो व्याख्यान-वाचस्पति जी आये हैं, बड़े ही नम्र हैं ! देखिये यदि अलंकार पढ़ने का कष्ट उठाया हो तो समझ जाइये कि यह वाक्य

विचार से मैं इस महान् रहस्य को सुन सकने का गौरव रखता हूँ।

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं, अवश्यमेव! बात यह है कि ऐसा करना नम्रता का लक्षण है। मैं बहुत ही छोटा आदमी हूँ। अतएव अपना नाम भी छोटे ही अक्षर से लिखता हूं।"

देखा आपने, नम्रता हो तो ऐसी! अब आपही कहिये कि यह बुद्धिमत्ता का दिवाला है या नहीं!

अब फिर कभी समय मिलने पर लिखूँगा; इस समय तो गणेश जी के वाहन लोग मेरी उदर-दरी में व्यायाम की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। आशा है कि मेरी पुस्तक 'घण्टाघर' आपको मिल चुकी होगी। जरा अच्छी समालोचना कर दीजियेगा। उसमें की कविताएँ आप देख ही चुके हैं। जरा लिख दीजियेगा कि "'शंख' जी के 'घण्टाघर' मे जितनी कविताएँ हैं उनमें तुलसी की तल्लीनता, सूर की सुषमा, बिहारी की विलासिता और केशव की कल्पना का एक ही स्थान पर पँचमेल अचार बन गया है।"

आपका हितैषी और अनुग्राहक
परम सहृदय
पण्डित शिरोमणि श्री वृकोदरनाथ शर्मा 'शंख'
बिसेसरगंज काशी।

मुंशी जी के मामा

मुंशी जी मेरे मित्र हैं। एक दिन गद्य वेला में सायंकाल पौने ६ बजे लहुराबीर की चौमुहानी पर आपसे मेरी मित्रता का पवित्र सूत्रपात हुआ! मैं अपने मित्र डाक्टर बनारसी प्रसाद भोजपुरी की फुफेरी सास के भतीजे के गौने में आये हुए लड्डुओं को खाकर, उनके घर से टहलता हुआ और 'गौने' तथा लड्डुओं के पारस्परिक विश्लेषण और 'सत्यं शिवं सुन्दरं' सम्बन्ध में एक गम्भीर विचार करता हुआ मुसोलिनी की नाक तथा हिटलर की मूँछ के सम्मिश्रण के समान बनारसी इक्के की भाँति

कच्छप—विनिन्दित गति से घर की ओर लौट रहा था कि अचानक एक सज्जन को तोंद से टकराकर मेरी तल्लीनता में बाधा पड़ो।

मैं बिगड़ उठा—"अजी आदमी हो या मारवाड़ी! देखते नहीं, एक सभ्य और सुसंस्कृत सज्जन महोदय चले आ रहे हैं। तुम भैंसागाड़ी की भाँति टकरा पड़े!!" फिर क्या था, लखनऊ की कोमल भाषा और भाव भंगियों में मुन्शी जी ने अपने हृदय के जिस सद्भाव का परिचय दिया, आज भो, जब कि हम दोनों एक दूसरे को 'लक्ष्मीवाहन' और 'वैशाखनन्दन' ऐसी उच्च साहित्यिक उपाधियों से अलंकृत करते हैं, उस की याद बरबस आही जाती है।

मुंशी जी को कौन नहीं जानता! आप अपने इस पवित्र नगर मे शैतान की तरह मशहूर हैं। हैं आप बड़े ही सीधे, मानो कुछ जानते ही नहीं! कहा जाता है कि एक बार मुगल सम्राट् अकबर के शासन काल मे महाराज बीरबल के कहने सुनने से आपके प्रपितामह के पितामह मुंशी फकीरचन्द "ऊँटखाने के मुंशी" का पद पाकर बड़े गौरवान्वित हुए थे। एक दिन सन्ध्या समय की बात है। मुन्शी जी अपने ऊँट खाने के दरवाजे पर चारपायी पर चौपाये की तरह लेटे हुए गोस्वामी तुलसीदास की एक नव-निर्मित चौपाई गाते हुए गुड़गुड़ी गुड़गुड़ा रहे थे! उधर से जंगल से शिकार खेलकर दो घोड़ों पर सवार बादशाह और बीरबल आ निकले। मुंशी जी हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए! बाद-

शाह ने पूछा—क्यों जी, तुम यहाँ क्या काम करते हो! मुंशी जी काँपते हुए बोल उठे—"हुजूर मैं मुंशीखाने का ऊँट हूँ।" बादशाह की सारी थकावट मिट गयी। जी खोलकर हँसे, और मुंशी जी की तनख्वाह दूनी कर देने का हुक्म दिया।

इन्हीं मुंशी-फकीरचन्द के वंशधर मेरे मित्र मुंशी मलीदानन्द जी हैं! ये भी बड़े ही सीधे हैं। इनके स्कूली-जीवन की घटना है। एक दिन इनके बड़े भाई ने एक कबूतर पकड़ा! उसे इन्हें थमा कर वे ज़रा उसके लिये पिंजड़े का इन्तज़ाम करने चले गये। मुंशी जी के अध्यापक उधर से आ निकले। पूछा—क्यों जी मलीदा! यह कबूतर मादा है या नर? मुंशी जी बोले "गुरुजी, ठीक कह नहीं सकता। ठहरिये चारा डालता हूँ। यदि खा लेगा तो नर होगा, और अगर खा लेगी तो मादा होगी!" अध्यापक महोदय अपने इस होनहार शिष्य की अद्वितीय बुद्धिमत्तापूर्ण सूझ पर गर्व और गौरव का अनुभव करते हुए चले गये!

मुंशी जी की सिधाई से लोग लाभ भी बहुत उठाते हैं। उन्हें 'बनाना' ही हमारी मित्र मण्डली का काम है। हमारी मण्डली में एक सज्जन हैं जिनका शुभ नाम पिनपिन पाँड़े है। ये मुंशी जी के पीछे बेतरह हाथ धोकर पड़े रहते हैं!

एक दिन हमारी गोष्ठी बैठी हुई थी। कुछ राजनीतिक चर्चा हो रही थी। पाँड़े जी ने कहा—सज्जनों, क्या यह दुःख पूर्ण अन्धेर की बात नहीं है कि मुंशी जी के साथ उचित बर्ताव

नहीं किया गया ! देखिये हमारे मित्र मुंशी मलोदानन्द वर्म्मा को चाहिये कि वे भारतसचिव के पास दरख्वास्त दें। शायद आपके ही नाम पर 'वर्म्मा' नाम का एक सूबा बना रक्खा गया है। काशी का 'मुंशी घाट' भी शायद आपके ही दादा जी के नाम पर है ! लेकिन इन दोनों स्थानों की मालगुजारी में हमारे सीधे सादे मुंशी जी का कोई हिस्सा नहीं ! कितना अन्याय और कितना अन्धेर है !" मुंशी जी ने भारतसचिव के पास दरख्वास्त भेजी या नहीं, यह कोई जानने योग्य बात नहीं है पर उस रोज रातभर उस प्रश्न पर वे गम्भीरता से विचार करते रह गये, यह सत्य है !

'मुंशीघाट या 'वर्म्मा' मुंशी जी के नाम पर बसाये गये हों या नहीं, परन्तु यह घटना पटना के प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर जात्याभाई पात्याभाई विद्यालंकार एम० ए० पी० एच० डी० ने अपने मध्यकालीन भारत के इतिहास में ठीक लिखी है, जिससे यह पता चलता है कि दाराशिकोह के जमाने में बनारस में मुंशी दीनानाथ नामक एक दरिद्र पटवारी रहा करते थे। उनका बड़ा लम्बा परिवार था ! एक बार उनके किसी रिश्तेदार अफसर ने उन्हें दाराशिकोह से मिलाया। उस समय मुंशी जी ने अपना जो सुन्दर पद्यात्मक परिचय दिया, उसे सुनकर दाराशिकोह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उस पद्य को पत्थर के खम्भों पर खुदवा कर गण्डकी नदी के तीर-भाग पर अवस्थापित कराया ! हाल ही में प्रोफ़ेसर जात्याभाई ने इस शिलालेख

मुंशी जी के मामा, गामा की तरह पुष्ट, पायजामा की तरह चुस्त और सुदामा की तरह सन्तुष्ट रहने वाले एक अद्भुत जन्तु हैं। आप अपने गाँव गाजीपुर के एक मिडिल स्कूल में हिन्दी के अध्यापक हैं। आपकी अवस्था इस समय दो कम बावन वर्ष की है! आप यदि कहीं यात्रा में जाते हों और कोई टोंक बैठे—"कहिये लाला जी किधर की तय्यारी है" तो बस फिर आप (पहनते तो धोती हैं) जामें से बाहर हो जाते हैं। एक बार जवानी के दिनों में आप गाजीपुर से हाजीपुर—अपने ससुराल के लिये—रवाना हुए! रेलगाड़ी द्वारा यह आपकी पहिली ही यात्रा थी। सुना था बिना टिकट लिये कोई आदमी रेलगाड़ी से सफर नहीं कर सकता। आप भी 'बुकिंग आफिस' की खिड़की के पास टिकट लेने पहुँचे! बोले—हे पिता महोदय ('बाबू साहब' कहना मुंशी जी अशुद्ध समझते हैं! मुंशी जी शुद्ध हिन्दी के प्रयोग के पक्षपाती हैं! बाबू और साहब को तो वे उर्दू फ़ारसी या विदेशी भाषा के शब्द मानते हैं!) हे पिता महोदय, शीघ्र ही मुझे भी प्रदान करिये। ('टिकट' शब्द विदेशीय होने से, उसका उच्चारण मुंशी जी ने नहीं किया) खैर वह टिकट बेचने वाले बाबूसाहब अधिकांश टिकट बाबुओं की तरह बुद्धि के पीछे लट्ठ लेकर पड़ने वालों में नहीं थे। वे बुद्धिमान् थे। अतः मुंशी जी का आशय समझ गये और बोले—कहाँ जाइयेगा?" अब क्या था! मुन्शी जी तो अग्नि शर्मा हो गये! बोले—हे पिता महोदय! आप भी कैसी वार्ता करते हैं। इससे आप से अभि-

शाय। मैं चाहे कहीं जाता होऊँ ! आप दे दीजिये ! किसी का सगुन बिगाड़ने के लिये अपनी नाक का कटाना ठीक नहीं। आप टोकते काहे हैं ? मैं ससुराल जारहा हूँ ! शीघ्र दीजिये !"

मुंशी होते हुए भी उर्दू के वातावरण से दूर रह कर हिन्दी के लिये यह अनन्य अनुराग अस्वाभाविक होते हुए भी उनका एक अनुकरणीय गुण है ! मुंशी जी साहित्य से बड़ा प्रेम रखते हैं। साहित्यरत्न होकर भी आप फ़रीक़ एक को पढ़ाते हैं, इसमें आपको बड़े गौरव का अनुभव होता है। आपका यह अध्यापकी पेशा आपका पैतृक पेशा है ! आपके पिता मुंशी दलसिंगार जी भी एक अंग्रेजी स्कूल के मास्टर थे। पढ़ाते थे वे सिर्फ हिन्दी-उर्दू ! एक दिन स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी समिति की बैठक थी ! सब अध्यापकोंसे कहा गया कि वे उसमें उपस्थित होकर अपने अपने दर्जों के छात्रों की पढ़ाई लिखाई, चाल-चलन आदि पर अपना वक्तव्य दें। सेक्रेटरी ने एक अध्यापक से जिरह की—क्यों साहब, आप किस क्लास के "क्लास टीचर" हैं ? अब तक आपने कितना कोर्स पढ़ाया है ? आदि ! मुंशी जी यह सब सुन कर बड़े चकराये। अपनी बगल में बैठे हुए एक साथी अध्यापक से बोले—कहो यार ! यही प्रश्न हमसे भी तो न पूछा जायगा ? मुझे तो याद ही नहीं ! कहो तुम्हें पता है कि मैं किस क्लास का क्लास टीचर हूं ?

हाँ, तो मुंशी जी (मुंशी मर्लादानन्द के मामा) इन्हीं मुंशी दलसिंगार ऐसे सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। रहा

यह कि आप एक हिन्दी मिडिल स्कूल के हिन्दी अध्यापक हैं और हिन्दी भाषा के लिये अपने उरस्थल में अपार प्रेम छिपाये हुए हैं। हिन्दी में भी आप उच्चारण पर विशेष ध्यान देते हैं। आप मूर्धन्य 'ष' को 'ख' और 'ड़' को 'र' कहने के पक्षपाती हैं। एक दिन बोले—"आज कल के मनुख्य बरे दोखी होगये हैं! मैं उनकी यह गरवरी देखकर क्यों रोख न करूँ। कल कुछ मनुख्य घोरे की गारी पर चर कर सोनारपुर जा रहे थे। घोरा सरक पर सरसर सरसर दौर रहा था। गारीवान घोरे को पीटता ही गया। अन्त में घोरा बिगर गया। पौख का महीना! इस जारे पाले में वह गारी को लेकर जलाशय में कूद परा। मुझे बरा सन्तोख हुआ।"

मुंशी जी मेरे मित्र मलीदानन्द जी के मामा हैं, इसलिये मै भी उन्हें 'मामा' कहा करता हूँ! जब कभी मुझे आपके गाँव पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ है, तब आपसे बात चीत करने पर अपूर्व आनन्द उठाने का अवसर मिला है! सच बात तो यह है कि आपका व्यवहार बड़ा निष्कपट सरल और अकृत्रिम है। नेताओं का भाँति Policy तथा Tact से मिले हुए Diplomatic भाषा का प्रयोग आप करना नहीं जानते! जो हृदय में है वही जुबान पर है! पता नहीं यह ग्राम-जीवन के पवित्र वातावरण के कारण है, अथवा उनका स्वभाव ही ऐसा है! कम से कम शहर मे तो ऐसी सरलता देखने को नहीं मिलती! आप शहर में अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ जाइये, ऊपर से वे आपका

खूब सत्कार करेंगे, भीतर से जल भुन जायँगे—कहाँ से यह आफ़त आयी! जलपान, पान और भोजन की कैसी चपत लगी! गाँवों में यह बात नहीं। रस पनही का ही प्रबन्ध होगा, पर खुले दिल से! प्रणाम, नमस्कार, आशीर्वाद होगा सच्चे हृदय से! शहर में "कहिये अच्छे हैं?" "सब आपकी कृपा है" ऐसे वाक्यों में आडम्बर पूर्ण सभ्यता की विषैली गन्ध भरी रहती है!

अरे यह तो मैं लेक्चर देने लग गया! कहाँ मुंशी जी के मामा और कहाँ लेक्चर! वे तो लेक्चर से बड़ा घबड़ाते हैं। संसार में उनका कथन है, लेक्चर देने से अधिक आसान कार्य और कोई नहीं है। एक पाश्चात्य विद्वान् का मत है कि लेक्चर देने में सफल होने के लिये व्याख्यान-दाता को यह चाहिये कि सभा में उपस्थित सारे समाज को मूर्ख समझ ले! तभी वह निर्भीक होकर सुन्दरता के साथ अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सकता है।

मुंशी जी समाज के प्राणियों को मूर्ख नहीं समझते! या तो यह नम्रता है, अथवा इसके विरुद्ध आचरण करना उनकी योग्यता से परे है; पर कारण चाहे जो हो, वे सबको, प्राणिमात्र को अपने से अधिक बुद्धिमान् समझते हैं। यही कारण है कि वे व्याख्यान-दाता नहीं हैं और व्याख्यानों से उन्हें चिढ़ है!

एक बार, पाँच छः वर्ष पूर्व, उनके गाँव में 'स्त्री-शिक्षा प्रचारक

संघ' के अध्यक्ष बाबू गिरीन्द्र चन्द्र घोष बार. एट. ला. पधारे हुए थे। गाँव में सभा हुई थी। मुंशीजी से लोगों ने स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर भाषण करने के लिये कहा। आपने अपने हृदय में साहस और .शक्ति का संचार कर निम्न लिखित वक्तृता दी—

"सभापति महोदय! मुझसे आप लोगों ने भाखण करने को कहा है! यह काम आपने अच्छा किया या बुरा, यह आप जानें पर यह अवश्य सत्य है कि मैं भाखण करूँगा। भाखण करना वड़ा कठिन है, पर फिर भी तथापि करके मैं व्याख्यान अवश्य दूँगा। यदि न दूँगा, तो आप लोग कहेंगे क्या? यही न? कि मुन्शी जी से भाखण करने को कहा. उन्होंने न किया! अब इस कलक का भागी मैं क्यों बनूँ। मेरे पिताजी से भी एकवार भाखण करने को कहा गया था। वे उसदिन अस्वस्थ थे। दो सप्ताह से रोगी रहने के पश्चात् वे मूँग की दाल का पथ्य लेकर विद्यालय मे पढ़ाने आये हुए थे! उसी दिन उनसे व्याख्यान देने को कहा गया था। वे व्याख्यान देने लगे। विखय था "अहिंसा अच्छी है या हिंसा!" सज्जनों, वे इस विलक्षण ढंग से बोलते गये, कि उनके भाखण का विचित्र प्रभाव परा। कितने लोग उस दिन से माता पिता के आज्ञाकारी हो गये, कितनी स्त्रियाँ पतियों को सच्ची सेवा करने लगीं! सज्जनों, व्याख्यान में वरा प्रभाव होता है! आप कार्य चाहे कुछ न कीजिये, केवल व्याख्यान दीजिये, देखिये आपका कैसा नाम

होता है ! आजकल लोग अनेक संस्थाए खोल कर व्याख्यान के ही बल पर चन्दा खा खा कर मोटे हुए जा रहे है ! मुझे स्मरण है कि एक बार मैं रेलगारी द्वारा जौनपुर से आजमगर जा रहा था। गारी में एक खद्दरधारी महाशय जी भी थे। वे किसी अनाथालय के मन्त्री थे ! कहते थे मैं गाज़ीपुर के 'गुल-कन्द अनाथालय' का मन्त्री हूँ। उस आश्रम में सात बच्चे और १२ बच्चियाँ है ! तीन विधवाएँ भी हैं ! देखिये इन इन लोगों ने इतना इतना चन्दा दिया है ! कृपया आप भी देवें !" संयोगवशात् उसी गारी में मैं भी सवार था ! मैंने कहा—"महाशय जी, गाज़ीपुर में तो कोई अनाथालय नहीं है !" पोल खुलती देख महाशय जी ने मेरे पैर पकरे। बोले—मेरा निजी परिवार ही उक्त अनाथालय है ! कृपया अब तो आप शान्त रहिये ! "सज्जनों, प्रातःकाल उठने से स्वास्थ्य ठीक रहता है ! जो लोग माता पिता की आज्ञा नहीं मानते उनकी बड़ी दुर्दशा होती है ! तुलसीदास जी की रामायण से बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं है ! आजकल के समाचार पत्र पैसे के लिये निकलते हैं। गाँवों में जो घी दूध मिलता है वह नगर में दुर्लभ है।"

मुंशी जी ने 'स्त्री शिक्षा' के सम्बन्ध में कितनी मर्मस्पर्शी भावों से भरी उपर्युक्त वक्तृता दी ! उनकी उक्त वक्तृता से गाँव के नवयुवकों में स्त्री शिक्षा के लिये अनुराग उमड़ा या नहीं, यह मैं नहीं जानता, किन्तु इस बात का ठीक पता है कि स्त्री-शिक्षा सुधारक-संघ के अध्यक्ष महोदय, मुंशी जी के इन युक्तिपूर्ण

सुसम्बद्ध भाषण को सुनकर, सम्भवतः उस भाषण को 'रेकर्ड' कराने के लिये, गधे के सिर से सींग की तरह जो भागे, कि आज की मिती तक उस गाँव में न लौटे और उस दिन के बाद किसी ने मुंशी जी को भी भाषण करते नहीं सुना।

मुंशी जी को कवित्त सुनने सुनाने का बड़ा शौक़ है। आप कहा करते हैं, मैंने बचपन में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भेंट की थी। मैंने उन्हें पद्माकर का एक कवित्त सुनाया था, जिसपर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक दुशाला पुरस्कार में प्रदान किया था! उस दुशाले को आप बड़े ही जतन से रखते हैं! आपके कई एक मित्र कवि हैं। ये सब कवि गण भी, मुंशी जी की धाक मानते हैं! मुंशी जी स्वयं भी कभी कभी कविता लिखते है और खूब लिखते हैं! एक बार आपको अपने ससुराल में अपने ससुर के श्राद्ध के निमंत्रण में जाना पड़ा। वहाँ आपने खूब हाथ साफ किये। मैं ऊपर कह आया हूं कि मुंशी जी बड़े निःसंकोची प्रकृति के मनुष्य थे! मैं तो जब-जब ससुराल गया हूँ, कभी भरपेट नहीं खाया हूं। न मालूम ससुराल में अधिक खाने की इच्छा क्यों नहीं होती! एक अजीब प्रकार की लज्जा गला घोंटने लगती है। आशा है कि कोई वैज्ञानिक महोदय इस रहस्य का अनुसन्धान करके अपने कुटुम्ब और देश का मुख उज्वल करेंगे। हाँ, तो मुन्शी जी ने खाया और खूब खाया। किन्तु घर आने पर उनके पेट में भयंकर दर्द उठा। वहाँ डाक्टर या वैद्य तो थे नहीं। एक हकीम जी

थे। वे बुलाये गये! हकीम लोग भी विचित्र जीव होते हैं! सिर में दर्द हो रहा है? दे दो जुलाब! पैर का अँगूठा टूट गया है, बस जुलाब दे दिया! सच पूछिये तो डाक्टरी मुक़दमा फौजदारी कचहरी है जहाँ चीर फाड़ का बाज़ार गर्म रहता है, वैद्यक का विभाग दीवानी अदालत है जहाँ लंघन करा कर रोगी को उसी प्रकार प्रसन्न किया जाता है जिस तरह मुक़दमें में तारीखें बढ़ा बढ़ा कर, परन्तु हकीमी तो म्युनिस्पल्टी है जहाँ पेट और पाखाना की सफाई का ही सर्वप्रथम प्रबन्ध किया जाता है! जुलाब इनका पेटेण्ट औषध है! 'गुलकन्द', मुनक्का और बनफ़्शा ये तीन चीज़ें घरमें भर कर रख दीजिये और अपने को 'हकीम' कहकर प्रचारित करना प्रारम्भ कर दीजिये ' यदि कोई आपसे बहस करे, तो बस दे दीजिये एक जुलाब। जहाँ कोठा साफ़ हुआ कि बहस करने की आदत छूटी।

हकीम साहब ने मुंशी जी को भी जुलाब दिया। मुंशी जी चार दिन और चार रात तक "मियाँ विरवीन" के 'बड़े भैय्या' बने रहे! जब कोठा साफ़ होगया तो इन्हें याद आया कि यह ससुराल के निमंत्रण का परिणाम था। इन्होंने पहिला काम यही किया कि निम्नलिखित कविता का निर्माण किया—

नहीं दुस्तर हैं यों अकेले पचास,
जन का पछाड़ दें दूर भगाना।
बड़ा सीधा हिसाब है, होना हकीम,
सभी जनों को दो जुलाब दिलाना।

कुछ मुश्किल है नहीं पूस या मागमें,
शीतल नीर से नित्य नहाना।
पर यार बड़ा श्रमसाध्य ही है।
ससुराल के श्राद्ध का अन्न पचाना॥

एक वार मुंशी जी के पिताजी बीमार पड़े। उनकी सेवा करने के लिये मुंशी जी ने छुट्टी की दरख्वास्त दी! हेड मास्टर ने छुट्टी नहीं दी! तब मुंशी जी ने यह कविता लिख कर भेजी!

रुग्ण पिता की न सेवा करूँ,
नहीं दूँ उन्हें औषध की घनी घुट्टी॥
ऐसा न हो सकता है कभी,
मत कीजिये ऐसा, न कीजिये कुट्टी॥

मान प्रतिष्ठा न बेंच सकूँगा,
मिलै या मिलै नहीं बीस रुपुट्टी!
कीजिये यों नहीं तंग मुझे,
अब दीजिये देव दयाकर छुट्टी॥

एक वार मुंशी जी के मित्रगण जगन्नाथपुरी जा रहे थे! मुंशी जी की इच्छा हुई कि वे भी वहाँ घूम आवें! परन्तु लाचार थे! गृहस्थी का भारी बोझा उनके कन्धों पर निहित था!पत्नी उनकी सदैव बीमार रहा करती है! तीन बच्चे हैं! बूढ़े

पिता जीवित हैं ! सब के लिये द्रव्य कमाने के अतिरिक्त वे ही भोजन भी पकाते हैं ! लड़कों को भी टट्टी मैदान कराना आपका ही कर्तव्य है ! पत्नी जी का कभी सिर दर्द करता है तो कभी पैर ! वे चले जायँ, तो उन्हें कौन दबावे ! बेचारे बड़े चिन्तित थे। बोले—भाई चलने की इच्छा तो है, पर गृहस्थी से लाचार हूँ। "मित्रों ने पूछा—आखिर सुनें भी तो, कि क्या लाचारी है।" मुंशीजी बोले—"अरे तुम लोग क्या जानते नहीं।" पूछो परसू मिसिर सब जानते हैं।"दुबेजी,इस गोष्ठी में सबसे अधिक बुद्धिमान् और विनोदी व्यक्ति थे। बोले—कहिये मिसिर जी, मुंशीजी की लाचारी के क्या कारण हैं। ऐसी तो कोई लाचारी ही नहीं, जिसको दूर करने के लिये हम लोग उपाय न प्रकट कर सकें।

परसू मिसिर बोले—हाँ यही देखिये, बड़े लालाजी बीमार हैं। अब ऐसे वृद्ध बीमार पिता को छोड़कर बेचारे मुंशी जी कैसे कहीं जा सकते हैं !

दुबेजी ने कहा—बस यही चिन्ता है न ? अरे लाला जी को मैं काशी के रामकृष्ण सेवा मिशन में भर्ती करा दूँगा ! वहाँ उनकी दवा भी होगी और भरण-पोषण भी !

मिसिर जी—"अच्छा मुंशी जी की धर्मपत्नी जी का क्या होगा ?

"उन्हें चुनार के विधवा-आश्रम में भर्ती करा दिया जाय !"

मिसिर जी—और उनके तीनों बच्चे ?

दुवेजी—अरे अनाथालय तो नगर नगर और गांव गाँव खुल रहे हैं, तब बच्चों की क्या चिन्ता। रहा मकान! सो उसमें के बर्तन भाँड़े सब नीलाम करा दिये जायँ। जब मुंशी जी लौटेंगे तो फिर नये बर्तन वगैरह ख़रीद लिये जावेंगे।

पता नहीं मुंशी जी को ये प्रस्ताव रुचे या नहीं, पर यह ठीक समाचार है कि वे जगन्नाथपुरी नहीं गये और फिर उन्हें किसी ने दुवे जी से कभी बात चीत करते नहीं देखा।

मुंशी जी (अर्थात् मुंशी मलीदानन्द के मामा) एक महान् आत्मा हैं! उनका यथा तथ्य वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है! क्या कहूँ, अपना गाँव छोड़ कर, वे कहीं बाहर आते जाते ही नहीं, अन्यथा आप लोगों को उनका दर्शन कराता! उनकी लम्बी लम्बी आँखें, और छोटे छोटे कान, तथा उनके सुरती फाँकने के अनोखे ढंग "प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण अतीत के भूतकाल" की याद दिलाते हैं।

मुंशी जी का पूरा नाम है—मुंशी बुझावन लाल वर्म्मा, किन्तु लोक मे ये "बुज्झन लाला" के नाम से प्रसिद्ध हैं!

समालोचक-शिरोमणि

कल शामको काशी के 'लवण भास्कर प्रेस' में स्थानीय 'सस्ता साहित्य संघ' की ओर से महाकवि तुलसीदास जी की जयन्ती मनायी गयी थी! सभापति थे भाषा-भामिनी-भर्तार पण्डित हरबोंग उपाध्याय काव्यकेसरी! साहित्य के मनीषी लेखक और कवि, सम्पादक और टीकाकार, छात्र और अध्यापक बहुत बड़ी संख्या में स्वर्गीय महाकवि तुलसी के पुण्य-स्मृति-पथ पर श्रद्धा के सुमन बिछाने के लिये एकत्रित हुए थे। कविवरों की छटा को देख कर दर्शकों ने अपने नेत्र शीतल

कर डाले। कुछ कविगण अपनी मूँछ मुड़ाये और सिर पर पीछे की ओर, बाल बढ़ाये चन्द्रवदनी नायिकाओं की कमनीयता का मान-मर्दन कर रहे थे। एक ओर 'हँसोड़' के मैनेजर बाबू प्रबोधचन्द्र वर्म्मा फानूस के पिण्डे की भाँति शोभायमान हो रहे थे! आपके काले रंग के ओठों पर पान की ललाई इस प्रकार विराज रही थी मानो तमाखू की टिकिया में आग की चिनगारी सुलग रही हो! एक कवि महोदय की कमर सब दर्शकों को अपने वास्तविक अस्तित्व के सम्बन्ध में संशय में डाल रही थी! एक ओर गजराज सी आँखों में सुरमा लगाये और सिर पर दुपल्ली टोपी तथा गणराज ऐसे स्थूल शरीर पर मोटा मारकीन का कुर्ता पहिने, बाबू छक्कन सिंह नगराज की तरह अविचल भाव से अवस्थित थे! यदि आप बीच बीच में खाँसते या हँसते न होते, तो यही ज्ञात होता कि भारत सरकार की ओर से प्राचीन बौद्ध काल के खंडहरों की खुदाई में मिली हुई कोई प्रस्तर-मूर्ति ही लवणभास्कर प्रेस को पुरस्कार में प्राप्त हुई है!

हाँ तो, पण्डित हरबोंग उपाध्याय ठीक समय से साढ़े सात मिनट पूर्व ही सभा में उपस्थित हो गये।

लाला मनोहर दास के प्रस्ताव और बाबू टीकाराम के अनुमोदन पर आपने सभापति का आसन ग्रहण किया! कुछ वक्ताओं के भाषण हो चुकने के बाद आप उछल कर उठ

ने मुझे 'खोजा' की उपाधि देकर अपने आप को गौरवान्वित करना चाहा है !
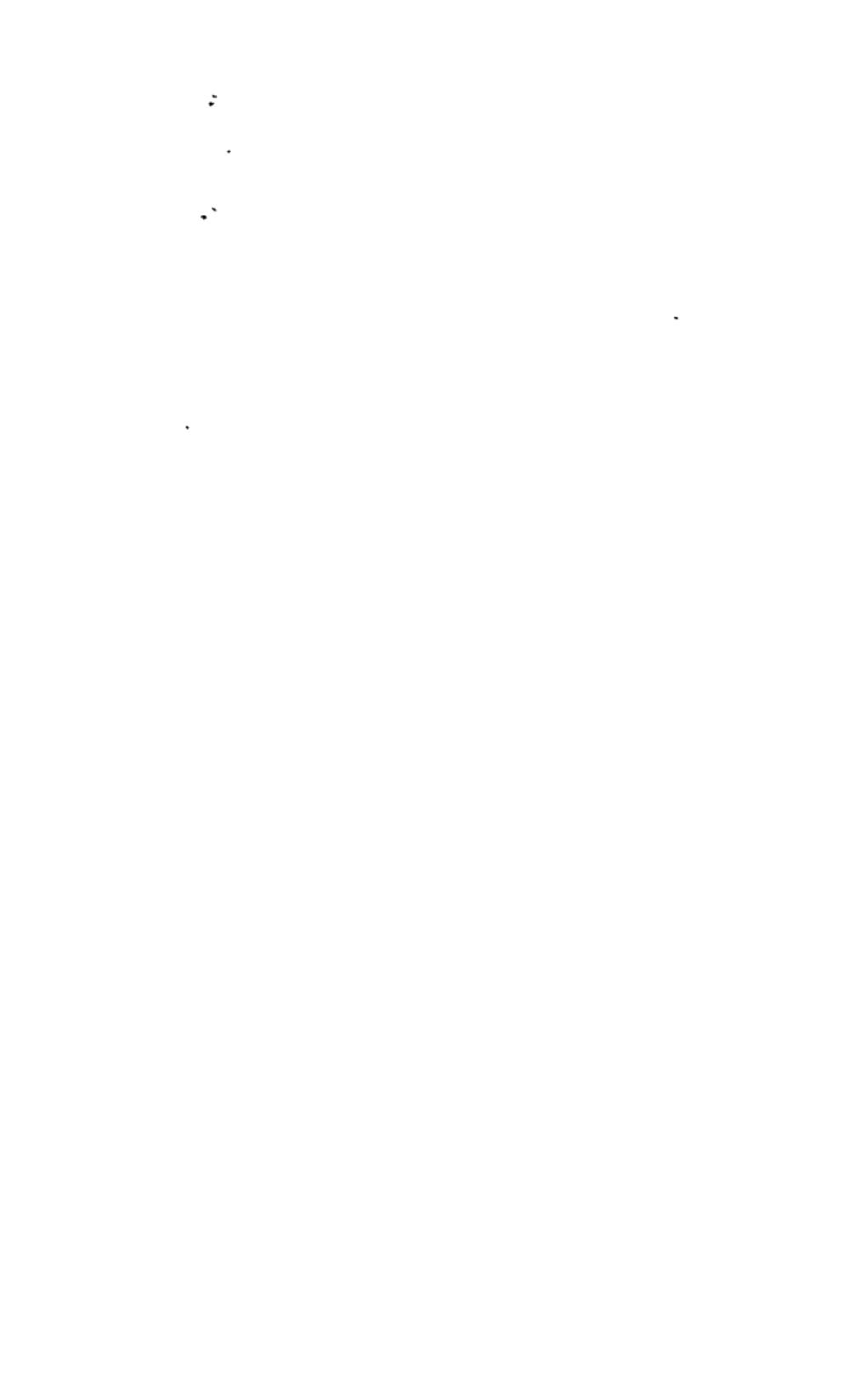
सज्जनों ! तुलसीदास जी हरिजन थे ! यह बात विशुद्ध सत्य है । लोग चौकेंगे । किन्तु केवल 'रामगुलाम शब्दकोष' के पृष्ठों पर दृष्टिपात करें, तो मेरे कथन की सत्यता स्वयं प्रमाणित हो जायगी, गोस्वामी जी ने रामायण के प्रारम्भ में ही लिखा है—"बन्दौं प्रथम महीसुर चरणा" ! इसमें महीसुर' शब्द ध्यान देने योग्य है ! 'महीसुर' वास्तव में 'मैसूर' शब्द का अपभ्रंश है । इससे ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी मैसूर में उत्पन्न हुए थे ! गोस्वामी जी ने लिखा है—"भाषा भणित मोर मति थोरी" यहाँ उदयपुर वाली रामायण की प्रति मे "भाषा गणित मोरि मति थोरी" पाठ मिलता है । अर्थात् गोस्वामी जी ने लिखा है कि—"मैं हिन्दी और हिसाब में बड़ा कमजोर हूँ ! सज्जनों यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं । गोस्वामीजी संस्कृतके विद्वान् आचार्य थे ! सस्कृतके पण्डित प्रायः अवभी ज्यादातर हिन्दीमे कमजोर ही होते हैं ! रहा हिसाब, उससे कविता से क्या सम्बन्ध ! न मालूम लोग 'गणित' कैसे पढ़ते हैं । यह भी क्या पढ़ने की चीज़ है ! यदि मैं शिक्षा विभाग का डाइरेक्टर बना दिया जाऊँ, तो गणित का पढ़ना पढ़ाना पहले रोक दूँ । गोस्वामी जी सवेरे शाम सोमरसका पान बड़े प्रेमसे किया करते थे । यह 'सोमरस' आधुनिक शराब ऐसी निन्दित और त्याज्य वस्तु नहीं थी । यह महर्पियों द्वारा आदृत एक पवित्र पेय थी । हाँ, तो गोस्वामी जी इसे बड़े

के सब रोगों को नष्ट करता है। जिस तरह पं० ठाकुरदत्त शर्मा की "अमृतधारा", जैसा उसके विज्ञापन से ज्ञात होता है कि, अनेक रोगों की पेटेण्ट दवा है, उसी तरह गोस्वामी जी का यह '[illegible]' चूरन भी सब रोगों का पेटेन्ट औषध था!

सज्जनो, लक्ष्मण जी को शक्ति-मूर्छित दिखा, सुषेण वैद्य की सहायता से उनका अच्छा कराना आदि घटनाएँ गोस्वामी जी ने अपनी वैद्यक-विद्या का चमत्कार दिखलाने के विचार से ही किया है, ऐसा समझना उचित है। फिर भी हमें सन्तोष है कि गोस्वामी जी ने आज कल के विज्ञापनबाजों की तरह अतिशयोक्तिपूर्ण असत्य विज्ञापन नहीं किया। हो सकता है कि उस समय अखबार न थे और जनता इतनी मूर्ख न थी, यही इसका कारण हो, परन्तु मैं तो यही कहूँगा कि गोस्वामी जी सत्य के उपासक होने के कारण झूठी विज्ञापन-बाजी से पृथक् रह सके। आप लोग माफ़ करेंगे, अभी हाल में मैंने एक दवा 'कन्दर्पपाण्डावलेह' का विज्ञापन एक स्वनामधन्य अखबार में पढ़ा था जो यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो यों था—

दौड़िये, लूटिये, ले भागिये, फिर न मिलेगा!

'कन्दर्पपाण्डावलेह'

इस अवलेह को यदि दुधमुँहे बच्चों को खिलाया जाय तो वे तुरन्त १८ साल के नव जवान बन जायँगे। यदि ९० साल का बूढ़ा इसे खा ले, तो वह तुरन्त काश्मीर की स्त्रियों ऐसा आक-

षक हो जायगा। यह इसी अवलेह का ही प्रभाव है कि राणा साँगा ने बदन पर अस्सी घाव होते हुए भी बाबर का मुकाबला किया था! चीन जापान की लड़ाई में जापान सरकार ने हमारे कार्य्यालय से इस अवलेह के २५०० डब्बे खरीदे थे,जिसका फल क्या हुआ वह लोग जानते ही हैं। सिकन्दर इसी को खाकर दिग्विजय के लिये रवाना हुआ था! जिन पुरुषों की स्त्रियाँ अपनेकोमल करों से उनके मस्तकों पर सुबह शाम जूता ऐसा पवित्र पदार्थ फेरा करती हैं, वे पुरुष यदि इस परमोत्तम रसायन को खाया करें, तो वे खुद उनके पैर की जूतियाँ बन जाँय। यदि इस अवलेह के साथ 'वीरभद्र चूर्ण' और 'भल्टाभल्ल' को भी मिला कर चाटें तो तत्काल फल होता है!"

सज्जनों, ऐसे विज्ञापन भी अब अखबारों में निकलने लगे हैं। और आप लोगों के पुण्यप्रताप से भारतवर्ष में इस बीसवीं शताब्दी में ऐसी मूर्खता भी बढ़ती जा रही है कि इन दवाओं की खपत भी हो रही है! 'वाजीकरणों और तिलाओं' के विज्ञापनों से शहर की दीवालें, और अखबारों के पृष्ठ पट से गये हैं। आजकल के स्कूल कालेजों के नवयुवक ही विशेष कर इन विज्ञापनबाजों के आश्रय दाता हैं! किन्तु मुझे खेद तो तब होता है जब स्त्रियों के लिये निकलनेवाली धार्मिक पत्रिकाओं में बड़े बड़े अक्षरों में इनके अश्लील और गन्दे विज्ञापन देखता हूँ। पत्रिकाओं ने नियम का पालन करने के लिये केवल भले ही [illegible]-हित के हों परन्तु बाहर विज्ञापन इस निर्भीकता से गन्दगी का

चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की।
घुंघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की॥
निवछावरि प्रान करै 'तुलसी'—बलिजाउँ लला इन बोलन की।

—इस रूप में अपने छन्द को पूरा कर भगवान् राम तथा उनके भाइयों के बाल-स्वरूप का पवित्र ध्यान किया!

सज्जनों, गोस्वामी जी के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ अनुसन्धान बाकी है! आजकल अनेक एम०ए०पास व्यक्ति Research की ओर झुक पड़े हैं। वह समय शीघ्र आने वाला है जब लोग भारत के प्राचीन इतिहासाभाव के अन्धकार में घुस कर कुछ प्रकाश की रेखाएँ बटोरेंगे! विश्वविद्यालयों के अनेक होनहार छात्र रिसर्च करने पर जुट गये हैं और १२ बजे मध्याह्न से ही लालटेन लेकर कीनाराम के अस्तर और गोरखनाथ के टीले ऐसे साहित्यिक गढ़ों में घुसकर छानबीन करने लग गये हैं! वह समय दूर नहीं है, जब इनके अखण्ड उद्योग से यह भली भाँति प्रमाणित हो जायगा कि महर्षि वेदव्यास बंगाली थे, कालिदास की कविताओं पर मिल्टन की छाप है, तथा पाणिनि ने हैदराबाद के 'गुमनाम' गाँव में ईसा मसीह के बाद १४ वीं शताब्दी में जन्म प्राप्त किया था।

मुझे या यों कहिये कि हमें, इस बातका हार्दिक हर्ष है कि गोस्वामी जी के एक चेला, (जो उनके लिये भाँग पीसा करते थे) बाबा रामोदास की शिष्य परम्परा में गोस्वामी भयंकराचार्य अब भी वर्तमान हैं। मुझे अपने इस अनुसन्धान में उनसे भी अमूल्य

सहायता मिली है, इसके लिये वे समस्त हिन्दी संसार के धन्यवाद के पात्र ही नहीं महापात्र हैं ! मैं उनके पास अपने अनुसन्धान के निमित्त पहुँचा। बाबाजी उस समय शयन कर रहे थे ! मैं प्रायः सवा तीन घण्टे तक प्रतीक्षा करता रहा ! जब उन्होंने मुझे बुलाया तो मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उनके चरण छूकर प्रणाम करने के पश्चात् मैं उनके निकट ही बैठ गया ! उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी पीठ और मेरे सिर पर हाँथ फेरा और खिलखिला कर हँस पड़े ! मैंने समझा शायद मेरी कुबड़ी पीठ पर हँस रहे हैं। वे बोले—बेटा तुम एक अजीब जन्तु से लग रहे हो ! मैं गौर कर रहा था कि तुम स्त्री हो या पुरुष ! तुम्हारी मूँछ मुड़ी रहने से ही मुझे ऐसा भ्रम हो गया था।"

मैंने कहा—महाराज, मैं आपके निकट कुछ साहित्यक अनुसन्धान करने आया हूँ। यदि कुछ बतला सकें तो बड़ी कृपा होगी !

बाबा जी बोले—हाँ, हाँ, क्यों नहीं बतलाऊँगा ! श्रीधर पाठक को जानते हो न ?

मैं बोला—हाँ महराज, उनके ग्रन्थ देखे हैं। मैं उन्हें जानता हूँ।

बाबा जी बोले—वाह, तुम क्या जानो, तब तो तुम बहुत छोटे रहे होगे। तुमने तब सत्संग कहाँ किया होगा !

फिर बोले—लाला भगवान् दीन को जानते हो न ?

मैंने कहा—नहीं महाराज, उन्हें तो मैं नहीं जानता !

बाबाजी बोले—वही तो ! तुम उन्हें क्या जानोगे ।

तब तो तुम बच्चे रहे । कुछ सत्संग किया नहीं । अच्छा उन्हें जानते हो न ? क्या उनका नाम है अच्छा सा 'हरिऔध' जी ! उन्हें जानते हो न ?

मैंने कहा—जी महराज उन्हें तो मैं जानता हूँ ।

बाबा जी ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ हाँ, तुमने सत्संग किया है ! तब तुम्हें साहित्यिक बातें बतलाऊँगा । मेरे एक मित्र हैं बाबू पंचानन दास । उन्होंने भी बड़ा भारी संग्रह किया है ! उन्हें तुम नहीं जानते ! सत्संग किया ही नहीं ! वे परम साहित्यिक हैं । हज़ारों पुस्तकें एकत्रित कर डाली हैं । अनेक चित्र और क्या कहते हैं, सिक्के और टूटोफूटी मूर्तियाँ उन्होंने संकलित कर रक्खी हैं । दो तीन हजार पुराने जूते और चट्टियाँ भी उन्हों ने संगृहीत कर रक्खी है ! अभी परसों मेरे पास एक बहुत पुरानी नरकट की कलम ले आये थे । कह रहे थे—यह कलम महाराज स्कन्दगुप्त की है ! इसे उन्हों ने बाणभट्ट को प्रदान किया था, जिससे उन्होंने कादम्बरी ऐसा ग्रन्थ लिखा !

हाँ, तो कल बाबू पञ्चाननदास मेरे यहाँ इसी समय आने वाले हैं ! मैं तुम्हें उनसे मिलाऊंगा । वे बड़े चतुर विद्वान और हाज़िर जवाब हैं । एक बार वे मेरे यहाँ बैठे थे । [illegible]

मित्र चम्पारन बाबू आये। बोले—"आज तो 'सुधा' में एक समालोचक ने आपके 'बुलबुल' नामक उपन्यास की बड़ी कड़ी आलोचना की है! बड़ी गालियाँ दी हैं। अन्त में चलते चलाते 'उल्लू' तक लिख दिया है! पञ्चाननदास ने सहज गम्भीर भाव से कहा—हाँ, हस्ताक्षर करना तो आवश्यक होता ही है! उसी स्थान पर लिख दिया होगा!"

देखी आपने पञ्चानन बाबू की हाज़िर जवाबी! एक बार एक सज्जन ने अपनी एक पुस्तक पर इनसे सम्मति माँगी, उस पर आपने यह लिख कर भेजा—

"प्रस्तुत पुस्तक, अप्रस्तुत विषयों पर एक व्यापक निबन्ध है! इसकी छपाई मिठाई की तरह सुन्दर और कागज़ मलाई की तरह चिकना है! हिन्दी साहित्य में ही नहीं. ब्रह्माण्ड के इतिहास मे यह पुस्तक बेजोड़ सिद्ध होगी! मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तक का प्रचार चिड़िया के घोसले से लेकर सम्राट् के बकिंघम पैलेस तक, तथा गुदड़ी बाजार से लेकर ब्रिटिश म्यूजियम तक हो जाय! पुस्तक में एक त्रुटि है जो खूब खटकती है! वह है लेखक का नाम—चन्द्रभानु शुक्ल। यह जरा असाहित्यिक है। इसमें विरोध अलंकार है। चन्द्र और भानु एक साथ नहीं दिखायी पड़ते। और यदि लिखना ही था तो पहले भानु तब चन्द्र लिखते। आशा है कि पुस्तक के दूसरे संस्करण मे प्रकाशक महोदय, इस त्रुटि का सुधार कर लेखक का नाम 'भानु चन्द्र' कर देंगे।

पंचानन बाबू कितने बड़े साहित्यिक हैं, यह आप अवश्य जान गये होंगे ! इनकी भाषा बड़ी जोरदार होती है। आज कल हिन्दी के अनेक लेखक मँजी हुई भाषा नहीं लिख पाते ! इसका कारण यही है कि उन्हें लिंग का ज्ञान नहीं है। वे स्त्रीलिंग को पुल्लिंग और पुल्लिंग को स्त्रीलिंग में लिखा करते हैं। किन्तु पञ्चानन बाबू ने इसके लिये बड़ा अच्छा नियम निकाला है। उनका मत है कि जिस समय 'शब्द' से कोई 'जोर', बड़प्पन और 'तीव्रता' का ज्ञान हो उस समय उसे पुल्लिंग, और जिस समय उससे कोमलता और लघुता का बोध हो, उसे स्त्रीलिंग' मानना चाहिये। जब हवा धीरे धीरे बहती है, उस समय वे कहते हैं "हवा बहती है" किन्तु जिस समय जोर की आँधी चलती है तो वे कहते हैं—"हवा बहता है"। छोटी गली को वे स्त्रीलिंग तथा बड़ी-बड़ी चौड़ी गलियों को वे पुल्लिंग ही मानते हैं। चौड़ी गली को वे 'गला' कहते हैं। एक बार उनकी गली में तीन दिन से एक बिल्ली मरी पड़ी थी। म्युनिस्पल्टी की ओर से सफाई न करायी जाने पर, उन्हों ने हेल्थ अफसर को डाँट कर लिखा—मेरे गले में तीन रोज से एक बिल्ली मरी पड़ी है, आपने अब तक सफाया क्यों नहीं कराया ?"

पञ्चानन बाबू की इन अभूतपूर्व प्रभाओं को सुनकर मेरे मानस में उनके दर्शनार्थ एक बड़ी प्रलोभना गुदगुदायमान हुई। मैं दादा जी से उनके दर्शनार्थ दूसरे दिन उपस्थित होने की प्रतिज्ञा कर घर लौटा।

दूसरे दिन निश्चित समय पर गया और बाबू पञ्चाननदास का सत्संग किया ! उस सत्संग से मुझे जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है उसपर मैं किसी अन्य समय प्रकाश डालूँगा । वास्तव में पञ्चाननबाबू एक अद्वितीय मनुष्य हैं । मैं तो प्रस्ताव करूँगा कि आगामी वर्ष जब वे ५३ वर्षके हों तो उनकी "लौह जयन्ती मनायी जाय !" मुझे खेद है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें अपना सभापति क्यों नहीं चुना ? खैर सम्मेलन का सभापति चुना जाना ही, योग्यता की कसौटी नहीं है । गोस्वामी तुलसीदास भी तो सम्मेलन के सभापति नहीं चुने गये थे । आप कहेंगे—उस समय सम्मेलन था ही कहाँ ! हाँ, इसे मानता हूँ, पर यदि सम्मेलन उस समय होता भी, तो भी तुलसीदास जी सम्मेलन के सभापति न चुने जाते । या तो महाराज बीरबल या श्री टोडरमल ही इसके सभापति होते ! अथवा हिन्दू मुस्लिम एकता की दृष्टि से अब्दुर्रहीमखानखाना को ही सभापतित्व मिलता । उँह, मेरा तो ख्याल है कि यदि कुछ बुद्धिमान् लोग भी उस समय के सम्मेलनमें होते और गोस्वामी जी को सभापति चुनते तो गोस्वामी जी साफ़ इन्कार कर जाते । सम्मेलन का क्या अर्थ और कार्य-गौरव रहता है, उसे वे जानते अवश्य रहे होंगे ।

सज्जनो ! मेरा भाषण आवश्यकता से अधिक लम्बा होगया ! अब आपलोग यहाँ नाहक बैठने का कष्ट न करें और घर जायँ । मैं अपना भाषण आज यहीं समाप्त करता हूँ । फिर समय मिलने

पर कभी और भी इस सम्बन्ध की चर्चा करूँगा। अब आशा है कि सभा के मन्त्री महोदय मुझे तथा आये हुए सज्जनों को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित करेंगे! मुझे यह जान कर बड़ा खेद हुआ कि गोस्वामी की जयन्ती के दिन भी इस सभा के सञ्चालक अभ्यागतों के लिये जलपान का प्रवन्ध नहीं कर सके हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि आगामी अधिवेशनों को अधिक सफल बनाने तथा जनता की उपस्थिति को और भी व्यापक बनाने के लिये, सभा की सूचना के साथ ही जलपान के आयोजन की सूचना भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा दी जाया करेगी!

—o—

द्वितीय खण्ड

(कविता-कलाप)

[इसके आगे 'द्वितीय-खण्ड' में श्रीयुत 'चोंच' जी की हास्यरसात्मक कविताएँ दी हुई हैं। ये समय समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई थीं और हास्य-रस के मर्मज्ञों ने इनमें छलकते हुए शिष्ट हास्य की मुक्त कण्ठ से सराहना की है। पाठक देखेंगे कि परिहास के साथ ही साथ समाज की कमजोरियों पर कैसा मीठा व्यंग्य अपनी गुदगुदी से रस की वर्षा सी कर रहा है! प्रकाशक]

चोंच-संहिता

वरदान-याचना

मानुष हौं तो वही कवि 'चोंच', बसौं सिटी लन्दन के किसी द्वारे।
जो पशु हौं तो बनौं बुल डॉग, चलौं चढ़ि कार में पोंछ निकारे॥
पाहन[1] हौं तो थियेटर हाल को, बैठैं जहाँ 'मिस' पाँव पसारे।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, किसी ओक[2] पै 'टेम्स' नदी के किनारे[3]॥

---

१ पत्थर २ घर या देवदारु का वृक्ष (Oak) ३ रसखान की एक सवैया का पाठान्तर ।

आत्म-परिचय

हम राम के आसरे हैं रहते,
कुछ चाह न जोग की जाप की है।
शिव की दया के हैं भिखारी सदा,
कुछ भीति नहीं भवताप की है॥
किसी के नहीं चाकर "चोंच" कभी,
प्रतिभा प्रभु प्रेम प्रताप की है।
कविता पर नेह-निगाह रखैं,
परवाह किसी के न बाप की है॥

बात करता है न घमण्डी छलियों से कभी,
एक छोड़ ईश्वर को और से न जाँचा है।
कर क्या सकेंगे सारे कुटिल कुचाली मिल,
रक्षक रमेश हैं सदैव यह साँचा है॥
पाँव पूजता है प्रेम से त्यों पण्डितों के नित्य,
लण्ठ को लगाता तीन तान के तमाचा है।
चाइयाँ, चुगल, चोर, चोग़द, चपाट, चण्ट,
चौपट, चवाइयों का "चोंच" कवि चाचा है॥

साधुओं का सेवक, महाशयों का मित्र मंजु,
आशुकवियों का मौलि—मुकुट महान हूँ।
दूर करता हूँ अभिमान दूसरों का भारी,
सत्य में निरत नित्य विगत-गुमान हूँ॥
सरस रसिक सज्जनों का हूँ पुरोहित मैं,
विद्या बुद्धि वालों का अमल यजमान हूँ।
सुकवि-समाज को हूँ 'टॉवर' समान सदा,
कुकवि-समाज को 'तनोवर' समान हूँ॥

मानते न अभिमानियोंकी अहम्मन्यता को,
थोथी चापलूसियों की चाह करते नहीं।
सुनकर भली कविता को हैं प्रसन्न होते,
मन में कदापि द्वेष डाह करते नहीं॥
नम्र नर-पुंगवों की पूजा को तयार नित्य,
नीचों पर नेह की निगाह करते नहीं!
निन्दा से किसी की कभी रुष्ट होते नहीं,
पर 'बादशाह' की भी परवाह करते नहीं॥

---

१. कलन्दर।

हम उनके हैं सदा सेवक सरल शुद्ध,
दूसरों के दिल को दुखाना जो न जानते।
उनके सखा हैं जो सराहैं शत्रु के भी गुण,
दूसरों के दोष हैं दिखाना जो न जानते॥
प्रेमी उनके हैं निज मुँह मियाँ मिट्ठुओं को,
पिट्ठुओं को सिर पै चढ़ाना जो न जानते।
हम उनके हैं, पर-दुःख में जो आँसुओं को,
जानते बहाना हैं, बहाना जो न जानते॥

काव्य के भुवन का हूँ नृप शक्र से भी बढ़,
वक्र-बुद्धियों का वैरी, दास चक्रधर का।
हर का मनोहर जो परम सुरम्य धाम,
वासी अविनाशी उसी काशिका नगर का॥
विधि की बनावट विचित्र हूँ, पवित्र हूँ मैं,
सेवक सरल हूँ सदा नम्र हो नर का।
हास्य का मैं 'सेन्स लाइसेन्स'[1] रखता हूँ, 'चोंच'
शोक या उदासी को एसेन्स हूँ ज़हर का॥

१ इन्द्र , बुद्धि २ अधिकार-पत्र ।

पागल हूँ, प्रेम का पुजारी हूँ, पवित्र हूँ मैं,
लोगों की निगाहों में विचित्र जीव खासा हूं।
रसिकों के वश, काव्य करता सरस—
अभिमानी मच्छड़ोंके लिये वहावा हवा सा हूं ॥
सज्जनों का सेवक सरल मैं सदा ही रहूं,
दम्भियों के दर्प हेतु कड़वी दवा सा हूं।
भिन्न भिन्न भावों का सुरम्य समुदाय हूं मैं,
'चोंच' सचमुच ही अजीब मैं तमाशा हूं ॥

—०—

हमारा दिल

'लाइफ'[1] हैं 'सोल'[2] हैं हमारी सब कुछ आप,
हृदय हमारा यह आपका 'एबोड'[3] है।
'चोंच' कवि एक मात्र मंजु अनुरक्ति युक्त,
चढ़ रहा कन्धों पर लालच का 'लोड'[4] है।
आपकी प्रसन्नता ही रायसाहबी है हमें,
क्रोध आपका तो हमें क्रिमिनल कोड[5] है।
फोटो न घिसेगी आपकी यों दुःखभार पाके,
दिल है हमारा न बनारस का 'रोड' है।

---

१ जीवन २ आत्मा ३ घर ४ बोझा ५ अपराधियोंके लिये कानून।

आकांक्षा

मानूँ क्यों पिता की और माता की मधुर वात,
ऐठूँ रुपये, दे इन्हें चकमा चराऊँ मैं।
'वाइफ'[1] को पीटूँ गणिका के गुण गाऊँ मंजु,
तन मन धन उस पर वलि जाऊँ मैं।
पूजा-पाठ छोड़ूँ, निज धर्म को धता दूँ वता,
देखूँ मैं 'सिनेमा' नहीं मन्दिर को धाऊँ मैं।
'वोटल' पै 'वोटल' उड़ाऊँ 'मीट'[2] खाऊँ खूब,
'होटल' में वैठ कर 'टोटल'[3] चुकाऊँ मैं॥

—०—

खद्दर को पहिन खरेंदू क्यों शरीर निज,
रेशमी किनारेदार धोती रहे मिल की।
कहे कवि 'चोंच' खूब मौज करूं 'वाप मत्थे'
चिन्ता नहीं होवे शॉपकीपर[4] के 'विल' की।
किस गोल गाल वाली 'मिस'[5] से मुहब्बत हो,
तभी होवे पूरी ईश आशा सभी दिल की।
पाकेट में पैकेट[6] सिगार का सुशोभित हो,
सुख सदैव हो सवारी साइकिल की॥

---

१ पत्नी २ मांस ३ विल के हिसाब का जोड़ ४ दूकानदार ५ कुमारी ६ समूह।

फटकार

मैं हूं 'प्रेजुएट'[1] तुम बोलते हो टूट हिन्दी,
बातों में न कोई रखते भी तुम 'लिंक'[2] हो।
'शिंक'[3] करते हो नहीं 'ड्रिंक'[4] करते हो कभी,
बैठे चुप चाप कहो करते क्या थिंक[5] हो॥
'ज़िंक'[6] ऐसे लोचनों पै चश्मा गोल्डेन[7] रख,
दिन रात व्यर्थ करते क्यों मुझे विंक[8] हो।
'चोंच कवि' मुझमें और तुममें बड़ा भारी भेद,
'ह्वाइट'[9] मैं 'स्वान'[10] तुम ब्लैक[11] 'स्वान इंक'[12] हो॥

"दाढ़ी"

बड़े बड़े 'टाल' बाल, बरु से प्रखर खड़े,
उनकी अपार क्या 'थिकेट'[13] यह थिक[14] है!
रोड़े अटकाती है, न 'किस'कर पाती मैं हूं,
'माउथ' है 'विण्डो'[15], यह कोई चारु चिक है?
फँस जाता फुड सब गिर के इसी में फिर,
आपकी जुबान कर पाती नहीं 'लिक'[16] है।
होती देख 'सिक'[17], हाय 'ब्रिक'[18] सी कठोर यह,
आपकी 'बियर्ड'[19] है या कोई 'ब्रूमस्टिक'[20] है॥

---

१ बी० ए० पास २ सम्बन्ध ३ डरना ४ शराब पीना ५ सोचना ६ जस्ता ७ सुनहला ८ घूरना ९ सफेद १० हंस ११ काले १२ एक प्रकार की स्याही १३ झाड़ी १४ घनी १५ खिड़की १६ चाटना १७ बीमार १८ ईंटा १९ दाढ़ी २० झाड़ू।

'अधर'

विधि ने सविधि मंजुता है इसकी बनायी,
इसकी अपार छवि होती नविकृत है।
'चोंच' कवि चकित चराचर निहारे हारे,
तन मन वारे ऐसी माधुरी अमित है॥
विश्व के निराश प्रेमियों को है 'प्रदीप' ऐसा,
इसका प्रभाव है अमोघ, सुविदित है।
मृदु मतवाला वाले! ओज का उजाला यह
अधर तुम्हारा 'डोंगरे का बालामृत' है॥

उपालम्भ

'लोटस'[1] ऐसे हैं लोचन लोल, त्यों ग्रीवा मनोहर जार[2] सरीखी।
'माउथ'[3] मंजुल'मून' सा मोहक,है थिन[4] त्यों कटि तार सरीखी॥
बाले तुम्हारी बड़ी द्रुत चाल है, हेनरी फोर्ड की कार[5] सरीखी।
हार गया कर के मैं शिफ़ारिस, तू न हुई मुझे 'हार' सरीखी॥

---

१ कमल २ सुराही ३ मुँह ४ पतली ५ मोटर।

रहस्यवाद !

अरे ओ इक्के वाले !
कहाँ घुसा आ रहा भवन में चल अनन्त की ओर !
उस निसर्ग के निभृत कोण में,
होता है प्रध्वनित निरन्तर !
कल कल छल छल पल पल थल थल !!
गुञ्जित कर दे मौन स्वर में
खड़ खड़ खड़ खड़, टिक टिक टिक टिक !!
मेरी टूटी फूटी हारमोनियम के मधुर कर्कश स्वर से
कर दे तू अपनी हृत्तन्त्री के स्वर का सुन्दर समवाय !!
अरे ओ इक्के वाले !
झिलमिल झिलमिल प्राची का पट
मौन साधना का आवेदन
थिरक रहे सूने कुटीर में आकर क्यों अविराम !
अरे मधुर उच्छ्वास मनोहर, सुना मौन संगीत !
अरे ओ इक्के वाले !!

आदर्श पतोहू !

जाको देखि सास की तुरत रुक जात साँस,
सुरपुर ससुर सिधारिबो चहत है
लखि कै जिठानी जिय ठानी विष खाइबे की,
नैननि ननद नद धारिबो चहत है।
तेवर निहारि वेगि देवर हहरि उठै,
भसुर स्वभौन को बिसारिबो चहत है।
नारि ऐसी डाकिनी के आवन के पूरव ही,
पति पास विपति पधारिबो चहत है।

किया करै घात उतपात रात दिन बैठी,
बात बड़े लोगन की टालतै रहति हैं।
'चोंच' कवि बसन मलीन हैं पहिन लेवीं,
सास औ ससुर को भी सालतै रहति हैं॥
सुतोंको सुताओं को सतावैं पीटैं मारैं काटैं,
पति से भी करती अदालतै रहति हैं।
केसनि में ढील जूँ को पालतै रहति नित्य
नाक में से नकटी निकालतै रहति हैं॥

"निराले नयन"

'लव'[1] का सन्देसा देते मधुर मैसेञ्जर[2] ये,
कहते न 'वर्ड'[3] एक देते निज 'वर्ड'[4] हैं।
'मैग्नेट'[5] हैं या ये जो तुरन्त अपनी ही ओर
खींच लेते लोहे से कठोर दिल हर्ड[6] हैं॥
चपला चपल हैं चकोर या कि मीन मंजु,
खलबली करैं खल, खंजन ये बर्ड[7] हैं।
करैं चित्त Own[8], देते बदले में Moan[9]
यह Tone[10] से विहीन ग्रामोफोन के रेकर्ड हैं॥

चञ्चल चतुर चारु चमक दमक भरे,
विष से बुझाये, यह तीर से भी तीखे हैं
'चोंच' कवि मीठें हैं, सुधा से सने सुन्दर हैं,
ज्योति पुंज जग के इन्हींमें दिव्य दीखे हैं।
किया करै वार, दुख देते हैं अपार आह !
ऐसी ये कुटिलता कहाँ से हाय सीखे हैं॥
'चियर'[11] करैं ये कभी, फियर[12] करैं ये कभी,
डियर ! तुम्हारे नैन 'डियर'[13] सरीखे हैं॥

१ प्रेम २ दूत ३ शब्द ४ वचन (प्रतिज्ञा) ५ चुम्बक ६ झुण्ड
ी ८ ग्रहण ९ कष्ट १० स्वर ११ प्रसन्न १२ भय १३ हरिन ।

परमेश्वर के प्रति !

रथ चढ़े अश्व चढ़े, गज चढ़े, आप कृष्ण !
चढ़ना मगर अभी आप जरा पढ़िये !
कहैं कवि 'चोंच' तैसे पुष्पक विमान चढ़े,
किन्तु, अब आगे इससे भी कुछ बढ़िये।
खगराज नाँघे चढ़े, पौन-पूत काँधे चढ़े,
मेरे नाथ ! मेरी बात मानस में मढ़िये !
भक्तकी सहायता को दौड़ना जभी हो देव !
लेकर किराये की ही सायकिल चढ़िये॥

ससुराल—माहात्म्य

हाथ लिये सार जागे सोवत ससुर घर
मान है मही पै मढ़्यों याहि ते मुरारी को !
नारि की ही नैहर में बैठे हैं पसार पैर,
भगति करत यासों लोग त्रिपुरारी को !
'चोंच' कवि रहत सुकवि-सरदार तहाँ,
नाम कविता में एहि कारन बिहारी को।
चारहू पदारथ सदैव देत, पूरे आस,
करि बिसवास, करू बास ससुरारी को॥

करुण क्रन्दन

देता है तिलक टीका माथ में बड़ा सा एक,
सिर पर धर लेता भारी कनटोप है।
पढ़ती हूँ नॉविल[1] तो कोप करता है अति,
अमित उजड्ड है, लगाता नहीं सोप[2] है।
चुटिया बड़ी है, मानों रोप[3] ही पड़ी है कोई,
सोते में बजाता नाक, दगती ज्यों तोप है।
व्याहा व्यर्थ फ़ादरने, मानी न प्रोटेस्ट[4] कोई,
बीसवीं सदी में मेरा पति पूरा पोप है॥

काठ को दतौन करता है एक मोटी बड़ी,
टुथ पाउडर को तो छूते घबराता है!
मिट्टी से शरीर मलता है न लगता 'सोप'
माथ पर राख और तिलक रमाता है।
कैसे निभ पायेगी, हमारी उसकी ऐ 'चोंच'
केक बिसकुट को कदापि नहीं खाता है!
लाजसे सदाही गड़ी जाती हूँ जर्मीमें हाय,
मुझ ऐसी 'वाइफ' का पति कहलाता है!

---

१ उपन्यास २ साबुन ३ रस्सा ४ विरोध।

परिवर्तन !

आप पालकी में चढ़े, आप साइकिल चढ़ीं,
आप मूरखाधिराज बैठे निज घर हैं।
आप फ़र्स्ट इयर बना रहीं सुशोभित हैं,
करती 'अटेण्ड' 'हिस्टरी' के 'लेक्चर' हैं।
आप 'डैमफूल'[2] यह मैडम बनी हैं मंजु,
करती थियेटर में 'हियर' 'हियर' हैं।
हाय हाय हिन्द ! हेर फेर हो गया है कैसा ?
नर हुए नारी और नारी हुई नर हैं !!

"जुगल-जोड़ी"

पढ़ अखबार खोजैं खबर विलायती ये,
खबर खबर यह बार खजुआवतीं।
'चोंच' कवि राज हिस्टरी को 'राम'[3] की ये पढ़ैं,
यह होम[4] में हैं बैठ आग सुलगावतीं।
जब पढ़ते हैं 'बर्क'[5] 'मिल्टन'[6] के ग्रन्थ यह,
यह नून तेल का हिसाब समुझावतीं।
यह 'बॉल[7] डान्स' से निपट पढ़ैं 'बैलेड'[8] को,
यह ओढ़े दोहर हैं सोहर सुनावतीं॥

१ इतिहास के व्याख्यान में उपस्थित होती हैं। २ मूर्ख एक नगर (इटली की राजधानी) ४ घर ५ एक प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ६ सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि ७ एक प्रकार का नाच ८ एक प्रकार की कविता।

"प्रेम-गर्विता"

वश में किया है सरबस उनका यों छीन,

इसी से 'प्रोड्यूस'[1] मैं चियर[2] कर देती हूँ।

कभी रूठती हूँ तो मनाते डर जाते खूब,

स्माइल[3] से दूर तो फियर[4] कर देती हूँ।

"मेरे हैं गुलाम, स्वामिनी मैं उनकी हूं सदा,"

सामने सभा के मैं 'क्लियर'[5] कर देती हूं।

'हार्ट'[6] की कठोरता तुरन्त ही 'डियर'[7] की यों,

टियर बहा के मैं 'टियर' कर देती हूं॥

१ उत्पन्न २ हर्ष ३ मुस्कराहट ४ भय ५ स्पष्ट ६ दिल ७ प्रियतम

तुम अपने अधरों से छू दो,
ये अधर हमारे प्रान-प्रिये !
लालिमा—लीन हो जायेंगे,
क्या होगा खाकर पान प्रिये !!

कपड़ों लत्तों गहनों के मिस
सर पर सवार हो आन प्रिये !
इस मेरे कोमल सर को क्या,
समझा है कठिन मचान प्रिये !!

भीगी बिल्ली बन जाता हूँ,
होती जब क्रुद्ध महान् प्रिये !
मैं चकित 'चीन' सा दीन बना,
तुम बनती विकट 'जापान' प्रिये !!

ये अधर हमारे हैं 'अछूत',
तुम 'अम्बेडकर' समान प्रिये !!
जो चाहो तुम इनको कर दो,
सिख मुस्लिम या क्रिस्तान प्रिये !!

तुम पा सकती हो दो हज़ार,
मैं कोरा कवि—सम्मान प्रिये !
तुम दोहावली 'दुलारे' की,
मैं हूँ 'हरिऔध' सुजान प्रिये !!

निराशा !

देख डर गयी मिरजई में शरीर पर,
सिर पर पगड़ी विराज रही ख़ासी है।
जूते चमरौधे पड़े, पैरों में सड़े हैं बड़े,
बात उसकी वो बस कड़ुई दवा सी है।
फाँक फाँक सुरती है थूकता सभी ही ठौर,
कहता है "पत्नी पति की सदैव दासी है"।
अक़्ल तो है ऐसी, कुछ शक्ल की न पूछो, मानो–
किरिश्चयन कालेज का कोई चपरासी है॥

"कलामे चोंच"

इन नयी इल्मारियों से हैं पुराने टाँड़ अच्छे।
आजकल के शायरों से लखनऊ के भाँड़ अच्छे।
ठोकरें खाते हैं ये, उनपर फ़िदा हैं लाट भी,
ग्रेजुएटों से हैं बनारस के हमारे साँड़ अच्छे॥

इन रईसों चापलूसों से दुखी कंगाल अच्छे।
मुफ्तखोरों पेटुओं से हरतरह चण्डाल अच्छे।
बीबियोंकी लात खाकर फिर उठा सकते न सर,
आजकल के शौहरों से सौगुने फुटबाल अच्छे।

सताते मुझको यों ही क्यों भला हो ?
जता दो गर हुई कोई खता हो।
हो गैरों को इमरती जौनपुर की,
हमारे ही लिये तुम खस्ता हो !!

इतना न रोज़ रोज़ परेशान कीजिये।
है बस ज़रा सी बात न हैरान कीजिये।
कबसे तड़प रहा है दिले बेक़रार यह,
'मलमास' है हुजूर अब तो दान कीजिये !!

बड़ा ही सख्त उनका है कलेजा गोया गाटर[१] है।
हमारे लोचनों से बह रहा अब 'रोज़ वाटर'[२] है।
जिगर यह जल रहा है, होगया है लाल जलभुनकर,
न इसको तोड़ ऐ खेतिहर ! न यह कोई 'टमाटर'[३] है !!

सम्मेलनों का शौक से सामान कीजिये !
घर पर बुला के ठाट से सम्मान कीजिये !
तबतक न यह पसन्द है कुछभी हमें ऐ 'चोंच',
जब तक न आप यह कहें 'जलपान कीजिये' !!

---

१ लोहे की धरन (शहतीर) २ गुलाब जल (अथवा रोज़ = प्रतिदिन, वाटर = पानी ३ विलायती भण्टा ।

तब और अब

अनुसूया द्वारा पतिव्रताओं
के विषय में
कर्तव्योपदेश (त्रेतायुग)

के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
पर-पति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र सम जैसे ॥
ग-वश जड़ धन-हीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
पति कर करि अपमाना । नारि लहहिं जमपुर दुख नाना॥
धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पति-पद-प्रेमा ॥
दानि भरता वैदेही । अधम सो नारि न सेवइ तेही ॥

र्तमान समय के पतियों
के कर्तव्य की
परिस्थिति (कलियुग)

के अस वस मन माहीं । सपनेहुँ आन नारि जग नाहीं ।
पर-तिय देखहिं कैसे । बहिन बुआ नानी सम जैसे ॥
ावश चतुर चलाकिन । अन्ध बधिर कर्कशा लड़ाकिन ॥
तियकर करि अपमाना । पुरुष लहहिं जमपुर दुख नाना ॥
र्म एक व्रत नेमा । तियहिं दिखावहु नित्य सिनेमा ॥
दानि पतनी मन-चाही । अधम सो पुरुष न सेवइ ताही ॥

"मन की मौज"

चली है आजकल आँधी, जहाँ में सब जगह ऐसी।
उड़ाये बुद्धुओं को राहे फैशन पर ले जाती है।
घुटाये दाढ़ी अपनी मौलवी साहब नजर आते,
मगर मिस्टर न कम उनसे कटाते मूँछ जो अपनी।

× × ×

'मेरी भी होगी कल शादी' इसे सुन करके फूला था,
मगर परसों से मेरी बीबी मुझको चपतियाती है।
सदा जूते ही के डर से मुहब्बत उससे करता हूँ।
यह इसकी वजह,-इस्कूल में लड़के पढ़ाती है॥

× × ×

हमारे होम[१] पर आये थे पोंगा जी भी 'यस्टर डे'[२],
खिलाया खूब था उनको समोसे सेव गुलगप्पा।
'मधुर मिष्ठान्न है वास्तव में' बोले वे हिलाकर दुम,
खलीता है नहीं हा हन्त! कैसे ठूँस लूं मुँह में॥

+ + +

अभी परसों ही की है बात, जाता चौक से था मैं,
दिखायी दा पड़ा मुझको, दड़ा सोंटा लिये आना।
बहुत नर भागते हैं पैर से कुछ सिर से भी भागें,
मगर महराज! मैं तो सर पै धरकर पैर को भागा॥

---

१ घर, २ कल।

मेरी औरत बहादुर बीरबर पण्डित बड़ी भारी,
मगर मैं भी बड़ा बीरांगणा जग में कहाता हूँ।
मेरे घर में भरे हैं देवता सारे यही कारण,
सवेरे श्रीमती जी को सदा मैं सर नवाता हूँ॥

× × ×

हमारे दोस्त 'घोंचा' जी बड़े ही फैशनेबुल[1] हैं।
ज़रा कुछ हाल तो सुनियेगा उनका वाके मुंह अपना।
गये कालेज नहीं कहकर मुझे अर्जेण्ट[2] बिज़िनेस[3] है,
मगर थी बात यह पालिश्ड उनका कल न था जूता॥

× × ×

अगर मैंने किसी से 'लव'[4] किया है वो है वह बीबी,
मैं उसको 'लव' करूँ ऐसे, ज्यों गुड़ को 'लव' करै चींटा।
मुलायम है पड़ी मालूम मुझको मालपुए सी,
मगर मैं भी खुदा का शुक्र है बढ़िया ही अनहर हूँ॥

× × ×

चला डण्डे को लेकर मारने कल एक गदहे को,
मगर भइया कहीं का बात, ऊत ज़ोर से रेंकलेस।
भगा मैं दुम को अपनी झाड़ मन मे सोचते ऐसा,
न कोई हर्ज है क्योंकि य' पहला वार मेरा है॥

× × ×

१ शौकीन २ आवश्यक ३ काम ४ प्रेम।

"अनन्य-अभिलाषा"

चिन्ता न हो देश की अपने, मातृभूमि को भूलूँ ।
सदा खुशामद में औरों की, मन में अपने फूलूँ ।
मधुर चापलूसी सुमन्त्र को जपूँ, चढ़ाऊँ डाली ।
दावत के ही हेतु करूँ मैं, सभी खजाना खाली ॥
त्यों गौरांग महाप्रभुओं को, सादर शीश नवाऊँ ।
खिदमत करूँ अफसरों की मैं, 'सर' की पदवी पाऊँ ॥

पुरस्कार का लालच देकर, सबसे लेख लिखाऊँ ।
सब अनन्य सम्वाद प्रकाशित कर प्रवीण कहलाऊँ ।
काट काटकर कटिंग बटोरूँ, इन्हें पत्र में छापूँ ।
निन्दा करूँ विरोधी गण की, उनकी गरदन नापूँ ॥
कभी रसातल कभी स्वर्ग, जिनको चाहे पहुँचाऊँ ।
किसी पत्र का बन प्रधान मैं सम्पादक बन जाऊँ ॥

अटसटट शब्दों को ठूसूँ, दिखलाऊँ हथकण्डे ।
करूँ शिफारिश, करें प्रशंसा सब साहित्यिक पण्डे ॥
अलंकार को दूर भगाऊँ, मात्रा-गण को बाटूँ ।
ध्वनि का ध्वंस करूँ क्षणभर में, गला काव्य का काटूँ ॥

खड़ छन्द में पद्य लिखूँ, पूरा अन्धेर मचाऊँ।
सम्मेलन में करूँ प्रेसाइड, 'कवि सम्राट्' कहाऊँ॥

सुन्दर श्वेत वसन कर धारण; लम्बी पगड़ी बाँधूँ।
कपट और छल के बल, केवल अपना मतलब साधूँ॥
ईंटाँ पत्थर कूट पीस कर, उसे महौषध कर दूँ।
लेकर गहरी फीस रोगियों से जेबों को भर दूँ॥
यम को मैं निश्चिन्त करूँ, बस नित्य मरीज़ फसाँऊँ।
नाड़ी-ज्ञान-विहीन रहूँ, पर वैद्यराज कहलाऊँ॥

ताँगे मोटर रक्खूँ अपने, उनपर करूँ सवारी।
जिन्हें देखकर लोग कहें 'यह तो डाक्टर हैं भारी'।
जहाँ चरण मेरे पड़ जावें, यम के दूत पधारें।
रोग नहीं पर रोगी को ही मेरे 'मिक्श्चर'[1] मारें॥
थम . टर[2] स्टेथिस्कोप[3] को पॉकेट मे लटकाऊँ।
सभी मर्ज में इंजेक्शन[4] दूँ, एल० एम० एस० कहलाऊँ॥

---

१ दवा (कई दवाओं का मेल) २ ज्वर नापने का यन्त्र ३ फेफड़ों की हालत जानने का यन्त्र ४ सूई लगाना ५ डाक्टरों की एक पदवी।

ओल्ड फूल्स'[1] हैं 'फादर और मदर क्यों' इनको मानूँ।
भाई वन्धु गंवार अज्ञ हैं, क्यों इनको पहिचानूँ॥
त्नी मेरी पतिव्रता है, यद्यपि सुन्दर तन की।
'मिस' के आगे कभी न हो सकती है मेरे मन की॥
ी० ए० पास मिले वस वीवी, मैं 'एम० ए०' हो जाऊँ।
घूमँ संग, सिनेमा देखूँ, पूरा सभ्य कहाऊँ॥

इक्केवान के प्रति !

ले चल मुझे बुलानाले तू, इक्केवाले धीरे धीरे!
ीन वजे कालेजसे धाये, अभी सातही तो वज पाये!
डेढ़ मील हम हैं चल आये, चल मतवाले धीरे धीरे!!
ीरे चलना नीति नहीं क्या? चल धीरे कुछ भीति नहीं क्या?
घोड़े से है प्रीति नहीं क्या? रास उठाले धीरे धीरे!!
ितना यह घोड़ा चलता है, उतना ही कोड़ा चलता है!
कह, क्या यह थोड़ा चलता है? रे सुस्ताले धीरे धीरे!!
रता क्यों भीषण प्रहार है? यह कैसा तेरा दुलार है?
इक्का ही तेरा उलार ह, यह वनवा ले धीरे धीरे!!
ह घोड़ा है मौन मनस्वी, अस्थि-चर्म-अवशिष्ट तपस्वी,
तू सारथी अपार यशस्वी, यह सुख पाले धीरे धीरे!!

---

१ पुराना बुद्धू।

कहीं दौड़ता तीव्र पवन सा, कहीं शान्त नीरव निर्जन सा

जीवन के उत्थान पतन सा, दृश्य दिखाले धीरे धीरे !!

अरे देख, घोड़ा यह भागा, रे ! सम्हाल, है बड़ा अभागा !

कुछ विचार ले पीछा आगा, और सताले धीरे धीरे !!

अभी कहाँ था इतना धीमा, अब सत्वरता हुई असीमा,

अरे ! कराले अपना बीमा, जान बचा ले धीरे धीरे !

अभी दूर मेरा मकान है, अन्धकार-आवृत जहान है ।

होता अब तेरा 'चलान' है, लैम्प जला ले धीरे धीरे !!

यह घोड़ा स्वच्छन्द सरीखा, मनमौजी मतिमन्द सरीखा,

छायावादी छन्द सरीखा, इसे मनाले धीरे धीरे !!

ले चल मुझे बुलानाले तू, इक्केवाले धीरे धीरे !!

---

१ बनारस का एक मुहल्ला । इसी के समीप सप्तसागर मुहल्ले मे 'चोंच' जी का निवास-स्थान है ।

'ओल्ड फूल्स' हैं 'फादर और मदर क्यों' इनको मानूँ।
भाई बन्धु गंवार अज्ञ हैं, क्यों इनको पहिचानूँ॥
पत्नी मेरी पतिव्रता है, यद्यपि सुन्दर तन की।
'मिस' के आगे कभी न हो सकती है मेरे मन की॥
बी० ए० पास मिले बस बीवी, मैं 'एम० ए०' हो जाऊँ।
घूमूँ संग, सिनेमा देखूँ, पूरा सभ्य कहाऊँ॥

इक्केवान के प्रति!

ले चल मुझे बुलानाले तू, इक्केवाले धीरे धीरे!
तीन बजे कालेजसे धाये, अभी सातही तो बज पाये!
डेढ़ मील हम हैं चल आये, चल मतवाले धीरे धीरे!!
धीरे चलना नीति नहीं क्या? चल धीरे कुछ भीति नहीं क्या?
घोड़े से है प्रीति नहीं क्या? रास उठाले धीरे धीरे!!
जितना यह घोड़ा चलता है, उतना ही कोड़ा चलता है!
कह, क्या यह थोड़ा चलता है? रे सुस्ताले धीरे धीरे!!
करता क्यों भीषण प्रहार है? यह कैसा तेरा दुलार है?
इक्का ही तेरा उलार है, यह बनवा ले धीरे धीरे!!
यह घोड़ा है मौन मनस्वी, अस्थि-चर्म-अवशिष्ट तपस्वी,
तू सारथी अपार यशस्वी, यह सुख पाले धीरे धीरे!!

---

१ पुराना बुद्धू।

कहीं दौड़ता तीव्र पवन सा, कहीं शान्त नीरव निर्जन सा

जीवन के उत्थान पतन सा, दृश्य दिखाले धीरे धीरे !!

अरे देख, घोड़ा यह भागा, रे ! सम्हाल, है बड़ा अभागा !

कुछ विचार ले पीछा आगा, और सताले धीरे धीरे !!

अभी कहाँ था इतना धीमा, अब सत्वरता हुई असीमा,

अरे ! कराले अपना बीमा, जान बचा ले धीरे धीरे !

अभी दूर मेरा मकान है, अन्धकार-आवृत जहान है ।

होता अब तेरा 'चलान' है, लैम्प जला ले धीरे धीरे !!

यह घोड़ा स्वछन्द सरीखा, मनमौजी मतिमन्द सरीखा,

छायावादी छन्द सरीखा, इसे मनाले धीरे धीरे !!

ले चल मुझे बुलानाले तू, इक्केवाले धीरे धीरे !!

---

१ बनारस का एक मुहल्ला । इसी के समीप सप्तसागर मुहल्ले में 'चोंच' जी का निवास-स्थान है ।

उपदेश-दोहावली

मेरी सब बाधा हरै, सुखदायिनि सरकार।
जाकी कृपा अपार ते, डिपटी होत चमार॥
आखर एक न जानहीं, सड़क बटोरन जायँ।
सोउ तेरे परसाद ते,एम० यल०सी० कहलायँ।
लण्ठ जण्ट वहु ह्वै गये, मैजिस्ट्रेट चमार।
पाइ क्रोध बैठे रहैं, बहु बी० ए० बेकार॥
'सर' होते तेरी कृपा पाकर भंगी डोम।
बसै सुखद सरकार यह, नित हमरे हिय-होम॥
चाहौ जो सुख शान्ति को,एहि जगतीमें आय।
रटहु याहि दोहावली, और न आन उपाय॥
मूरख पण्डित होत हैं, ज्ञानी होत घमोंच।
याही हेतु दोहावली, विरचत है कवि 'चोंच'॥
निन्दा किये बड़ेन की, नाम बहुत बढ़ि जाय।
शौकत अली वली भये, गाँधी को गरियाय॥
बूढ़ भये तो क्या भया, करहु ब्याह सों प्रेम!
पचपन बरस बिताय के, सौकत वियहे मेम!!
दान कबहुँ नहिं दीजिये, यासों कष्ट महान!
बलि सीता हरिचन्द को, है प्रत्यच्छ प्रमान!!
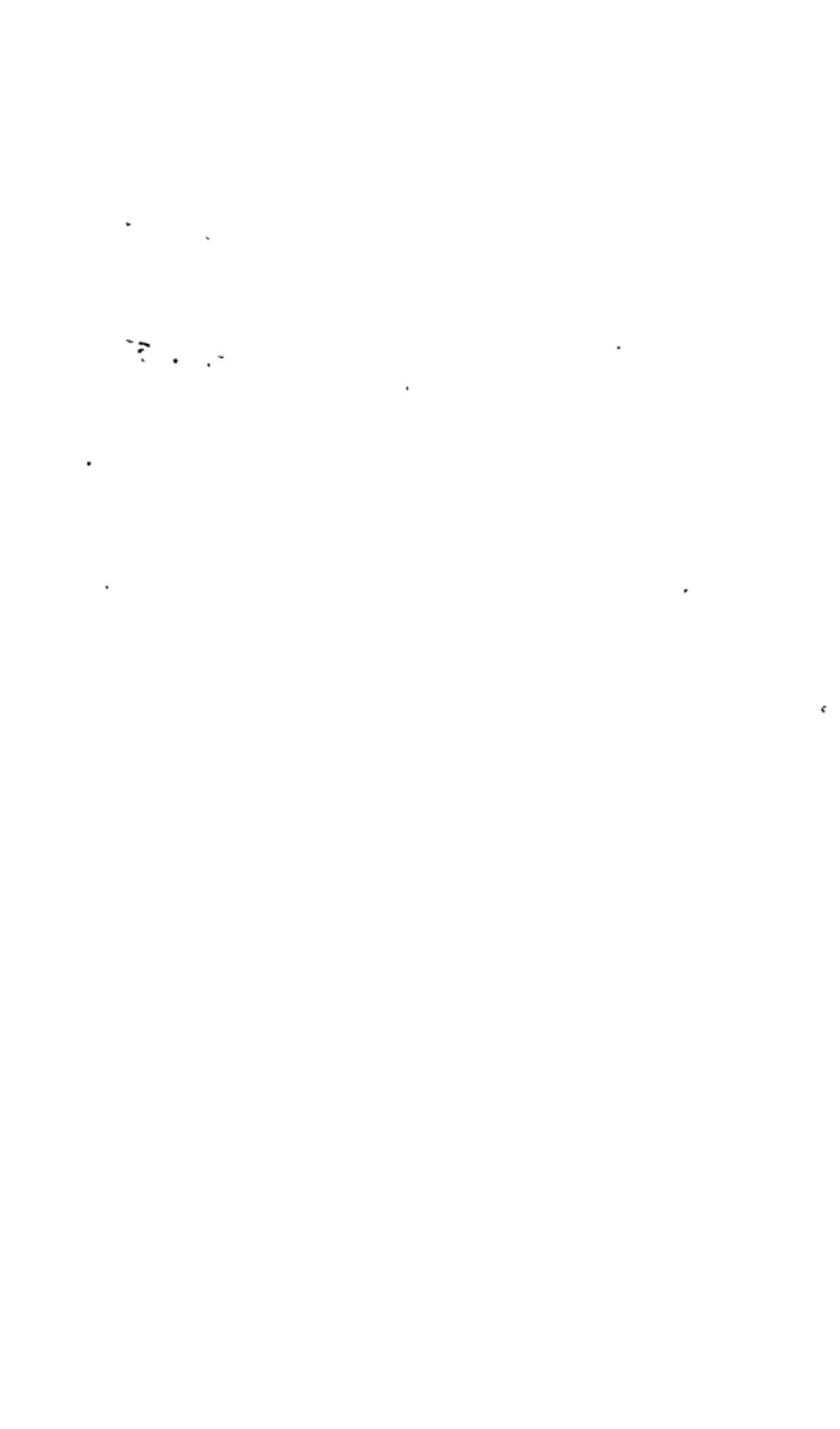
वर्षा-वर्णन

लछिमन देखहु मोर गन, नाचहिं वारिद पेख !
सम्पादक नाचहिं मनौ, देखि मुफ्त कौ लेख !

घन घमण्ड गरजत नभ घोरा।
जिमि गरजहिं कालों पर गोरा।
दामिनि दमक रही घन माहीं।
नेता—बैन यथा थिर नाहीं।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।
समालोचना कविगण जैसे।
दादुर धुनि चहुँओर सुहाई।
कविजन मनहुँ पढ़हिं कविताई।
सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि चन्दा 'लीडर' पहँ आवा।
बरसहिं जलद भूमि नियराये।
मेम्बर झुकहिं एलेक्शन आये।
क्षुद्र नदी भरि चली उतराई।
जिमि लघु कवि कविता छपवाई॥
भूमि परत भा डाबर पानी।
टीकहिं मिलि पुस्तक बिनसानी॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई।
कांग्रेस जिमि कौंसिल महँ धाई॥

दुष्ट समालोचक !

सतयुग में ये कुटिल, निरंकुश दैत्य कहाये !
त्रेता में दशशीश-भवन, राक्षस-पद पाये !
द्वापर में ये अधम, कंस के साथ रहे थे !
इनके अति उत्पात, सभी ने सदा सहे थे !!
कवि 'वृन्द' कठिन कलिकाल में, आये मुँह-नोचक वही !
अपशब्द—युक्त निन्दा-निरत, सिद्ध समालोचक वही !!

गिरिधर की नयी कुण्डलियाँ

साईं ये न विरुद्धिये, सम्पादक, अखबार।
कम्पोजीटर प्रेस के, प्रूफ विलोकन हार॥
प्रूफ विलोकन हार, प्रकाशक औ विक्रेता।
मेम्बर, वोटर, चेयरमैन, नाऊ औ नेता !
कह गिरधर कविराय, भलै छोड़ै कविताई।
इन ग्यारह सौं बचै, विरुद्धै इन्हें न साईं॥

सम्पादक होइ कीजिये सपनेहुं नहिं अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारिको ठाँउँ न रहत निदान।
ठाउँ न रहत निदान, छापि कविता यश लीजे।
'प्रोपोगैंडा' दिखलाय, विनय सबही की कीजे।
कह गिरधर कविराय, लेख लिखिये नहिं मादक।
मैनेजर खुश किये, आप रहिहैं सम्पादक॥

साईं अवसर के परे, को न सहै अपमान।
जिमि चुनाव—अवसर परे, पग पूजैं धनवान।
पग पूजैं धनवान, वोट की माँगै भिक्षा।
स्वारथ-रत नर नीच देहिं पर-हित की शिक्षा।
कह गिरिधर कविराय, भ्रमैं नरकट की नाईं।
मेम्बर बनिबे काज, नाच नाचैं बहु साईं॥

साईं अपने काव्य को भूल न कहिये कोय।
तब लगि ह्वै चुप बैठिये, जब लौं सुनै न कोय।
जब लौं सुनै न कोय, न अपनी महिमा व्यापै।
जब लग कोई अखबार बीच उसको नहिं छापै।
कह गिरिधर कविराय, न सम्मेलन में जाई।
अपनो काव्य प्रकाश करौ तबलौं हे साईं

नेता कबहुँ न मानवी, कोटि करै जो कोय।
सरबस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय
तऊ न अपनो होय, पाय थैली भर चन्दा।
काम काढ़ि चुप रहैं, न दे बदले मे कन्दा
कह गिरिधर कविराय, पाप के यही प्रणेता।
छिन 'लिबरल' छिन सोशलिस्ट ये सारे नेता

१ नरम दलवाला २ समाजवादी।

उन्मत्त-नायिका

ऐज़ सून ऐज़ आई साॅ हर इन् दी फ़ील्ड सिटिंग,
आई वेण्ट नियर हर ऐण्ड सैट सैडली।
सेज् पोएट 'चोंच' आई टोल्ड हर मेनो ए टेल,
बट ओह् शी बिगैन वीटिंग मी बैडली॥
आई सैट डाउन ऐण्ड प्रेड फाॅर माई लाइफ,
ह्वाइल शी लाॅफ्ड ऐण्ड वेण्ट अवे ग्लैडली।
आफ्टर ए वीक वन्स मोर आई साॅ हर डियर,
रनिंग हियर ऐण्ड देयर इन दी मड मैडली।

उलहना

हमके सवाय के ववाय द मिली का वोहैं,
नाहीं परमेस्सुर के तनिकौ डरल तूँ।
पान के चवाला जैसे वकरी चरै ले घास,
एहर ओहर रात दिन विचरल तूँ।
टँगिया पिराला, पीयव भँगिया भुलाय जाला,
हम दवाईला जब खटिया परल तूँ।
पहिन दुपल्ली टोपी, 'चोंच' का घमोंच ऐसन,
घूम घूम गल्ली गल्ली कविता करल तूँ।

---

* अंग्रेजी भाषा में हिन्दी का घनाक्षरी छन्द।

मूँछ-विहीन

वार नहीं मुख पे जो सम्हार—
सकैं उनकी वर वीरता कैसी ?
आनन को चिकना यों किया,
शुचि सोह रही नयी नायिका जैसी !
ज्ञात नहीं यह हो सकता कभी,
'ही'[1] है विचारा, विचारी कि है 'शी'[2]
मूँछ मुड़ा कर भारत के बने ऐसे,
हितैषी की ऐसी को तैसी !!

वैदिक विधान

चुटिया कटा के दी है लुटिया डुबाही मानों,
स्थान जनेऊ के नेकटाई छाजमान है !
मुँह में सिगार, हैट सिर पे सवार,
पियैं वाइन[3] विलाइन[4] के संग खान पान है !
वाप को वताके वुद्धू , पूर्वजों को पाजी कहैं,
ऐसी आचरण-शीलता का ध्रुव ध्यान है !
कार्य ऐसे हो रहे हमारी आर्य जाति के हैं,
वीसवीं सदी का यही वैदिक विधान है।

---

१ वह (पुल्लिंग) २ वह (स्त्रीलिंग) ३ शराब ४ विल्लियां।

कवि !

हो जाओ तुम सव सावधान, मैं लिखने बैठा हूं कविता।
तुम सव कौशिकके दल विशाल, मैं हूं सुप्रभ सुन्दर सवित
जिससे मैं विगड़ कभी जाता, उसकी मैं खूव खवर लेता।
निन्दा कर औरों की हरदम, अपना दिमाग हूँ भर लेत

मैं सव कवियों से आला हूं।
मैं कविवर हूं मतवाला हूं।

मैं पुरस्कार हूं जीत चुका, प्राचीन सुकवियों से बढ़ कर।
मैं महा कविवरों का काका, लिखता हूं दोहे गढ़ गढ़ क
मेरी चौपाई चौपायों से बढ़कर सुन्दर होती है।
पढ़ता हूँ कविता तो मानो कविता करुणा से रोती

मैं युग-परिवर्तन-कारी हूं।
मैं कविता का व्यापारी हूं।

मैं और तुम

मैं महा मरुस्थल मारवाड़,
तुम शिमला और मसूरी।
मैं महुए का ठर्रा केवल,
तुम हो शराब अंगूरी ॥
तुम फ्रेंच[1] और मैं रूसी,[2]
तुम हो लेमोनेड, मैं जूसी !!

मैं विना तेल का हूँ मसाल,
तुम हो विजली का लट्टू।
तुम लेटेस्ट माडेल[3] फोर्ड कार,
मैं सड़ियल अड़ियल टट्टू ॥
तुम मैजिस्ट्रेट, मैं हूँ रईस !
मैं हूँ पब्लिक, तुम हो पुलीस !!

---

१ फ्रान्स निवासी २ रूस देश निवासी ३ सबसे नये ढंग की मोटर।

तुम गुपचुप रसगुल्ला सफ़ेद,
मैं रेवड़ा और अनरसा !
तुम शानदार पिस्तौल प्रिये !
मैं जीर्ण फावड़ा फ़रसा !!
तुम वैकेंसी[१], मैं कैण्डीडेट[२] !
मैं हूँ पोंगा, तुम अप-टु-डेट[३] !!

मैं रजपूती साफ़ा भरकम,
तुम टोपी दिव्य दुपल्ली !
मैं हूँ खोजवाँ[४] का गुड़हट्टा,
तुम खरी कचौड़ी[५] गल्ली !!
मैं कॉटेज[६] तुम हो कैसिल[७] !
मैं हैण्डप्रेस[८], तुम ट्रेडिल[९] !!

---

१ खाली नौकरी ।

२ उम्मीदवार ।

३ नयी रोशनी का ।

४ काशी का एक मुहल्ला, यहां गल्ले तथा गुड़ आदि की दूकानें अधिकतर हैं । ५ काशी का एक मुहल्ला; यहाँ मिठाई पूरी की दूकानें हैं । ६ झोपड़ी ७ किला ८ हाथ का प्रेस ९ नये ढंग की छापने की मशीन ।

तुम सजी लखनवी 'सुधा' सरस,
मैं हूँ पटने का 'योगी'।
तुम क्षीण पारसी वाला हो,
मैं स्थूल सेठ रस्तोगी ॥
तुम हो वावर, मैं साँगा !
मैं हूँ एक्का, तुम ताँगा[१] !!

मैं विधवाश्रम का हूँ मन्त्री,
तुम हो विवाह—विज्ञापन !
मैं बैठा ठाला हूँ एम० ए०,
तुम दस रुपये की 'ट्यूशन !!
तुम 'बेंत' और मैं 'सोंटा'।
तुम 'जरी' और मैं 'गोंटा' !!

तुम ठुकराती हो बार बार,
करती हो क्यों अवहेला !
मैं हृत्तन्त्री का तार प्रिये !
तुम तन्मयता की वेला !
तुम ब्रजभाषा, मैं डिंगल[२] !
तुम रीतिकाव्य, मैं पिंगल !!

---

१ पाठान्तर—तुम हो ताज़ा मैं बासी।
तुम अफ़सर, मैं चपरासी ॥

२ एक प्रकार की राजपुतानी भाषा।

मैं पड़ा तुम्हारे हूँ पीछे,
अब लेकर लम्बी लाठी!
तुम रामायण की हो टीका,
मैं राम नरेश त्रिपाठी॥
मैं क्रोड़ पत्र, तुम अलबम[१]।
मैं हूँ सूरन, तुम सलजम!!

तुम अग्रलेख सम्पादकीय,
मैं केवल अन्तिम पन्ना।
तुम दिव्य दुग्ध की धवलधार,
मैं फटा पुराना छन्ना[२]!
तुम फ्लूट[३] और मैं तासा[४],
तुम होटल हो, मैं 'बासा'[५]॥

तुम हो मिस्ट्रेस[६] मेरे घर की।
मैं हूँ केवल चपरासी।
तुम हो छलना ललना ललाम,
मैं बेवकूफ विश्वासी।
तुम हो 'मिस', मैं हूँ दण्डी।
मैं हूँ कुर्ता, तुम बण्डी॥

---

१ चित्रों का समूह।
२ दूध छानने की चलनी या कपड़े का टुकड़ा।
३ बाँसुरी। ४ एक प्रकार का बाजा।
५ एक प्रकार का साधारण हिन्दुस्तानी ढंग का होटल।
६ मालकिन।

नयन का जादू !

ताक कर मुझे दिल चाक कर मेरा गयी,
तभी से समस्त सुख हुआ 'पास्ट टेन्स'[1] है।
खोदियाहै सेन्स[2], Hence[3] पागलसा घूमता हूँ,
घर बार छोड़ दिया पास में न पेन्स[4] है !
जितने तुम्हारे घने बाल हैं निराले काले,
उतनी निराशा मुझे घेर रही डेन्स[5] है !
कुछ भी न लाई सेन्स मनमें बता क्यों अरी !
दिलों के चुराने का लिया क्या लाईसेन्स है ?

रूप-गर्विता

'रोजी चीक' मेरे सदा सुघर सलोने स्वयं,
रोज़ी पाउडर नहीं "रब[6]" करती हूँ मैं।
हँसती जभी हूँ सभी मस्त बन जाते बस,
वश में समस्त तभी क्लब करती हूँ मैं।
सब की निगाहों में न जाने गड़ जाती क्यों हूँ,
घायल सभी को बेसबब करती हूँ मैं।
दिलों को चुराने के अजब मैं अनोखे ढब,
जब करती हूँ तो गजब करती हूँ मैं !

---

१ भूतकाल २ बुद्धि ३ इसलिये ४ पैसा पाई ५ घनी ६ रगड़ना।

हास्यरसावतार

महाकवि 'चोंच' जी के सम्बन्ध में

आचार्य पं० केशव प्रसाद मिश्र, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी—

......इनकी जिन विशिष्ट योग्यताओं का मुझ पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, वे अभिव्यंजना की असाधारण कला से युक्त भाषा सम्बन्धी पाण्डित्य, काव्यमय पदार्थों में नैसर्गिक प्रवृत्ति तथा किसी भी प्रस्तुत विषय की गूढ़ात्मा का तात्कालिक सत्वर परिज्ञान आदि गुण हैं।......ये व्यंग्य लेखक हैं और तीव्र व्यंग्य-लेखक हैं। किन्तु इनके व्यंग्य में यह बड़ा ही सौष्ठव है कि यद्यपि ये अपने शिकार पर बड़ी तीक्ष्णता से चोट करते हैं, तथापि इनका वह शिकार भी, औरों (पाठकों) के समान ही, अपनी पारिहासिक अप्रतिष्ठा में भी आनन्द का अनुभव करता है।

कवि-सम्राट् पूज्यपाद 'हरिऔध' जी—

......पं० कान्तानाथ पाण्डेय एक विलक्षण प्रतिभा के मनुष्य हैं। उनमें आशु कवित्व है। तत्काल कविता रच देने की उनमें अच्छी शक्ति है। हास्यरस की कविता करना आसान नहीं; पर यह इनके बाएँ हाँथ का खेल है। इस विषय में दक्ष होने पर भी, ये अन्य विषयों पर अधिकार के साथ कविता करते हैं। यह इनमें असाधारणता है। परमात्मा इनको चिरंजीवी करे।

समालोचक-सम्राट्, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल।

......इनमें दृष्टि की स्वच्छता है, अनेक रूपात्मक विश्व-काव्य के अनुशीलन की क्षमता है और सदा जागती रहने वाली प्रतिभा है। संस्कृत साहित्य के सम्यक् अध्ययन, हिन्दी काव्य

हास्यरसावतार

महाकवि 'चोंच' जी के सम्बन्ध में

आचार्य पं० केशव प्रसाद मिश्र, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी—

……इनकी जिन विशिष्ट योग्यताओं का मुझ पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, वे अभिव्यंजना की असाधारण कला से युक्त भाषा सम्बन्धी पाण्डित्य, काव्यमय पदार्थों में नैसर्गिक प्रवृत्ति तथा किसी भी प्रस्तुत विषय की गूढ़ात्मा का तात्कालिक सत्वर परिज्ञान आदि गुण हैं।……ये व्यंग्य लेखक हैं और तीव्र व्यंग्य-लेखक हैं। किन्तु इनके व्यंग्य में यह बड़ा ही सौष्ठव है कि यद्यपि ये अपने शिकार पर बड़ी तीक्ष्णता से चोट करते हैं, तथापि इनका वह शिकार भी, औरों (पाठकों) के समान ही, अपनी पारिहासिक अप्रतिष्ठा में भी आनन्द का अनुभव करता है।

कवि-सम्राट् पूज्यपाद 'हरिऔध' जी—

……पं० कान्तानाथ पाण्डेय एक विलक्षण प्रतिभा के मनुष्य हैं। उनमें आशु कवित्व है। तत्काल कविता रच देने की उनमें अच्छी शक्ति है। हास्यरस की कविता करना आसान नहीं; पर यह इनके बाएँ हाँथ का खेल है। इस विषय में दक्ष होने पर भी, ये अन्य विषयों पर अधिकार के साथ कविता करते हैं। यह इनमें असाधारणता है। परमात्मा इनको चिरंजीवी करे।

समालोचक-सम्राट्, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल।

……इनमें दृष्टि की स्वच्छता है, अनेक रूपात्मक विश्वकाव्य के अनुशीलन की क्षमता है और सदा जागती रहने वाली प्रतिभा है। संस्कृत साहित्य के सम्यक् अध्ययन, हिन्दी काव्य